सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

द्धान्त एवं
ल का
क मासिक

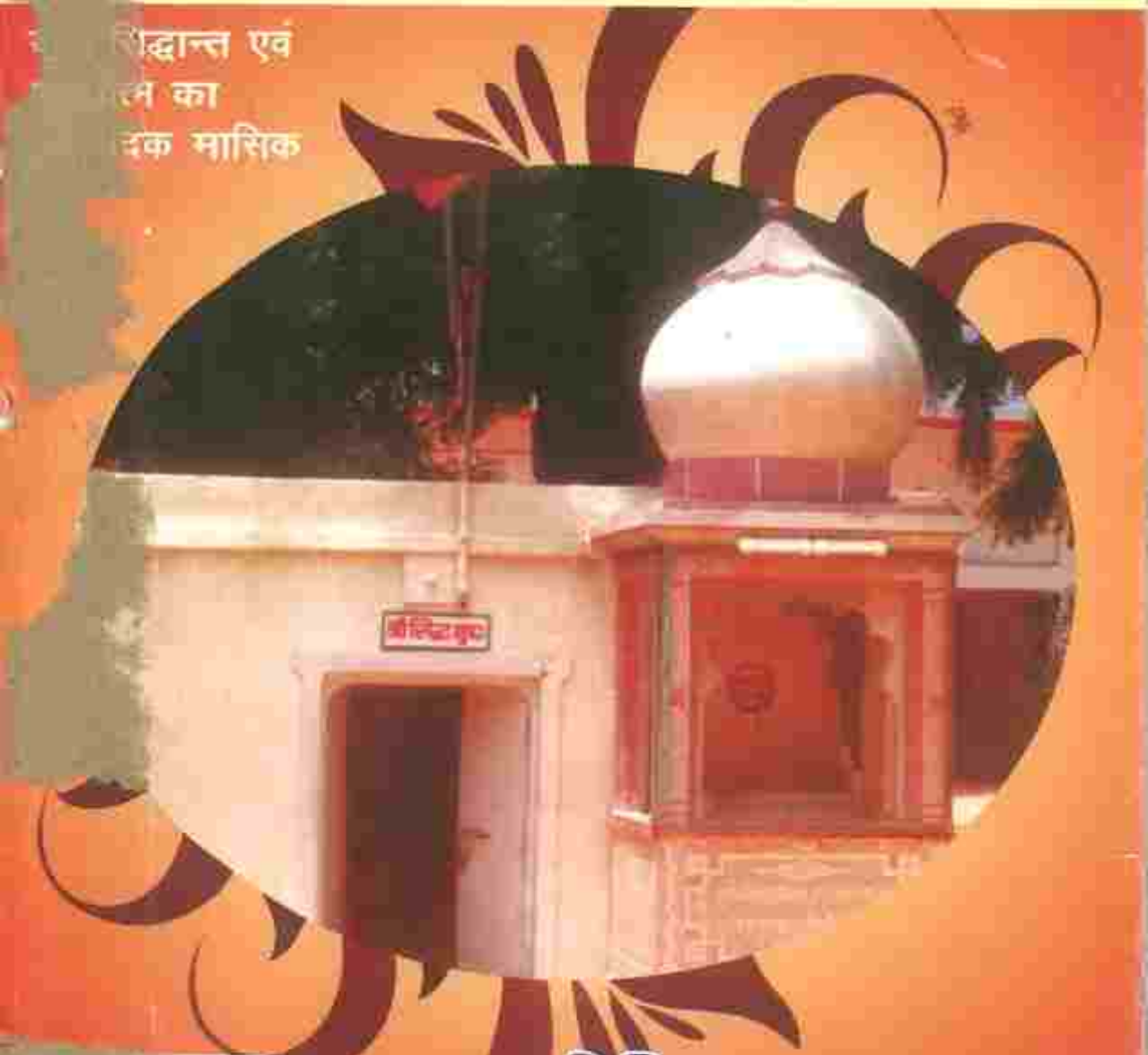

अंक : 1
अप्रैल, 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन(आयु) – सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अतः सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

◆ ◆ ◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्ठो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च।।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ठ एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूप वाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परंब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूप वाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वारम्।
सुह्रदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुह्रद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यामृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 42 अंक : 1

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुवै शरणमहं प्रपद्ये।।

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। उस परमात्म ज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं, मोक्ष की इच्छा वाला साधक शरणरूप में ग्रहण करता हूँ।

अप्रैल, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख –योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ –डा. विजय सिंह	11
4.	भारत में गौवंश का संरक्षण क्यों ? –मेजर आर.सी. मिश्र	15
5.	श्री प्रभुजी की कृपा! –राजीव कुमार	10
6.	श्री गीतामृत –पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	19
7.	गुरु कृपालीला –जगदीश राए बंसल	22
8.	बालकों को आकर्षित करके निहाल करना –अवनीश भटनागर	26
9.	योगमयी गंगापुर –राजेश कुमार बलिया	29
10.	जन्म और मृत्यु क्यों ? –डा. जे.पी. शर्मा	33
11.	श्री नारायण द्वारा नारायण को योग दीक्षा –केशव देव उपाध्याय	39
12.	योग संदेश श्री सद्गुरुदेव भगवान –अमित कुमार मिश्र	46
13.	मन की शक्तियाँ – श्री विवेकानन्द जी	48
14.	ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव	52
15.	वैराग्य का महत्व –रामेश्वर खण्डेलवाल	55
16.	गणितीय सूत्र का संक्षिप्त प्रयोगात्मक स्वरूप –प्रो. ऋषिराम शर्मा	59
17.	सिद्ध कबीर के चमत्कारिक चरित्र – श्री एस.आर. सागर	63

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सर्वेष्टप्रद योग-साधना

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

साधारणतया मनुष्य देवताओं की उपासना में प्रवत्त इसी हेतु होते हैं ताकि उनसे वे शक्ति पा सकें और उनके सांसारिक कार्यों की पूर्ति हो सके। परन्तु देवताओं की शक्ति भी सीमित ही होती है। जब उनका पुण्य क्षीण हो जाता है तो वे देवत्व से भ्रष्ट हो जाते हैं।

अतः समझदार व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर यही है कि वह स्वयं सशक्त होने का पथ अंगीकार करे। योग साधना का मार्ग स्वयं शक्ति सम्पन्न होने का मार्ग है। योगी अपनी साधना के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु से लेकर वृहदातिवृहद् विश्व पर्यन्त अधिकार कर लेता है।

योगसाधना में मनुष्य को अन्तर्मुख होना पड़ता है और उसके लिए ध्यान का अभ्यास करना पड़ता है। ध्यान के अभ्यास के कई क्रम हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्व हैं। इन पर क्रमशः वह अपना ध्यान करता है। पृथ्वी तत्व में वह मकानों, पहाड़ों, मनोरम भूभागों पर ध्यान एकाग्र करता है। जल तत्व में समुद्र, नदी-नाले और उनकी शक्ति तथा सौंदर्य को ध्यान में वह देखता है। तेज तत्व में अग्नि, बिजली, सूर्य और प्रकाशमान विविध वस्तुओं को वह ध्यान का विषय बनाता है। वायु तत्व में स्पर्श सुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ उसके ध्यान की लक्ष्य होती हैं। आकाश तत्व पर ध्यान जमाकर वह आकाश के अनन्त विस्तार और दैर्ध्य को परखता है और उनसे उठने वाले नादों का श्रवण करता है।

आरम्भ में योगी सम्प्रज्ञात समाधि की साधना करता है। उसके चार भेदों में से वितर्कानुगम समाधि का उल्लेख ऊपर किया गया है। दूसरा भेद है-**विचारानुगम योग**। इसमें योगी उपरोक्त पाँच तत्वों की सूक्ष्म तन्मात्राओं के साक्षात्कार में प्रवृत्त होता है। पृथ्वी तत्व की तन्मात्रा गन्ध है। इस पर ध्यान जमाने से योगी दिव्य गन्ध का अनुभव करने लगता है। वह सोचता है-'**गन्धोऽहं**' मैं गन्ध ही हूँ। इस साधना के द्वारा उसका अधिकार गन्धों पर हो जाता है। वह जब जैसी गन्ध चाहे उत्पन्न कर सकता है और दूसरों को प्रदान कर सकता है।

जलतत्व की तन्मात्रा रस है। इस पर योगी अपना ध्यान जमाता है तो उसे विश्व में व्याप्त सभी रसों का साक्षात्कार हो जाता है। उसे दिव्य रसों का अनुभव भी होता है एवं रसों पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। वह जब चाहे दूसरों को भी दिव्य रसों का आस्वाद करा सकता है।

तेजतत्व की तन्मात्रा है–रूप। रूप पर ध्यान लगाने से योगी दिव्य रूपों का दर्शन करता है। उसका शरीर भी दिव्य सौंदर्य से परिपूर्ण हो जाता है। किसी भी प्रकार का रूप धारण करने की उसमें सामर्थ्य आ जाती है। सभी रूपों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

वायुतत्व की तन्मात्रा है–स्पर्श। स्पर्श पर ध्यान करता हुआ योगी दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है। वह दिव्य आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। किसी भी वस्तु को अपने स्थान पर बैठे–बैठे ही वह छू सकता है और संसार के किसी भी भाग में स्थित वस्तु को उठाने एव स्पर्श करने मे सक्षम हो जाता है।

आकाश तत्व की तन्मात्रा शब्द है। इस पर ध्यान जमाने पर योगी को दिव्य संगीतों व शब्दों के श्रवण का आनन्द मिलता है। वह संसार की प्रत्येक भाषा और प्रत्येक शब्द के अर्थ से परिचित हो जाता है। दिव्य नाद उसे सुनाई देने लगते हैं। कहा गया है कि नाद के समान लय प्रदान करने वाला अन्य कोई साधन नहीं है। अत: मनोलय की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। वह देवताओं से वार्तालाप करता है उनके शब्दो को (आकाशवाणी को) यथावत् सुनता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी अवस्था है – **आनन्दानुगत समाधि**। उपरोक्त साधना के पश्चात् योगी आनन्दानुगत समाधि के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। इस साधना मे आनन्द की और तेज लहरें जिन्हें साधक पहले अनुभव कर चुका है उसमें ओतप्रोत हो जाती है। वह अपने आपको तेजोमय और आनन्दमय देखता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ अवस्था है–

अस्मितानुगत योग

जब योगी अनुभव करता है कि मैं ही सब कुछ हूँ, मैं ही यह विश्व हूँ, मैं शिव हूँ, मैं विश्व के कण–कण में व्याप्त हूँ। जब योगी साधना के आरम्भ का संकल्प लेकर ध्यान जमाने के लिए प्रयास करता है तो उसे गुरुदेव की ओर से मदद मिलने लगती है। आरंभ में वह मन को एकाग्र करता है। मन की एकाग्रता ही योग की वर्णाक्षरी है। मन को अन्तर्मुख करो, हृदय गुहा में ध्यान करो। किसी वस्तु पर मन को एकाग्र करने का नाम ही धारणा है, मन में किसी वस्तु के स्वरूप का ध्यान करना धारणा है। धारणा में मन को पकड़ कर बाँधे रखना और ध्येय वस्तु का सतत् दर्शन करने का अभ्यास पुष्ट हो जाना ही ध्यान कहलाता है। अभ्यास से धीरे–धीरे ध्यान पुष्ट होता है। ध्यान की स्थिति पुष्ट हो जाने पर साधक ध्येय पदार्थ से अपने आपको अभिन्न अनुभव करने लगता है। वह उस समय यह भी भूल जाता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, सिर्फ ध्येय लक्ष्य ही शेष रहता है। इसी स्थिति का नाम **सम्प्रज्ञात समाधि** है।

योग–साधना में शक्तियों का प्रादुर्भाव बड़ी शीघ्रता से होता है। शक्ति पाकर साधक को अहंकार से बचना चाहिए। नारदजी के उदाहरण को सदा ध्यान में रखना चाहिए। अभिमान करेगा तो साधक का पतन हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अथवा यदि

साधक प्राप्त सिद्धि शक्तियों का भोग प्राप्ति में विनियोग करेगा तो भी उसका पतन हो जायेगा। साधक विनयी बनकर योगमार्ग में निरन्तर बढ़ता रह सकता है। विनयी होकर ही वह योग की भूमिका को तरता है। गुरु ही योगमार्ग में एकमात्र सहायक होते हैं। गुरुतत्व देवताओं की शक्तियों से भी अत्युच्च एवं उत्कृष्ट है। देवता लोग अपनी–अपनी किन्हीं शक्तिमात्र से संयुक्त हैं, अतएव सीमाबद्ध हैं, परन्तु गुरुदेव अनन्त शक्ति से विभूषित, असीम, सर्वव्यापी और सर्वेश्वर हैं तथा साधक की भलाई के लिए सतत् एवं सर्वत्र उपस्थित रहा करते हैं।

देवता लोग योगियों की शक्ति देखकर घबराते हैं, जलते हैं और उन्हें पथभ्रष्ट करने के लिए विविध भोग प्रस्तुत करते हैं ताकि योगी उनकी अपेक्षा उच्चतर शक्तियों का स्वामी न बन सके। विशेषत: उपरोक्त पंचतन्मात्राओं की सिद्धि कर लेने के बाद जब योगी दिव्य लोकों में गमन करता है तो देवताओं द्वारा सत्कार और विविध भोगों के उपहार पाता है। उस समय योगी को चाहिए कि वह न तो उन भोगों में रूचि ले और न उन्हें त्यागने की अपनी सामर्थ्य के कारण मन में अभिमान आने दे। गुरुदेव में श्रद्धा रखने वाला योगी समय–समय पर उनकी मदद पाता हुआ समस्त विघ्न–बाधाओं को पारकर अपनी साधना पूरी कर लेता है। गुरु की सीमा काल की सीमा से परे है। इसीलिए सिख लोग कहते हैं–'**सत श्री अकाल**' जो काल से रहित है वही सत्य है। गुरु की शक्ति से ऊँची और कोई शक्ति नहीं है। उसे हम राम, कृष्ण, शिव या विष्णु आदि किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। उसी परम शक्ति से भयभीत होकर देवता लोग भी अपने–अपने काम करते हैं। गुरुदेव के चरण–कमलों के स्मरण मात्र से चित्त में दिव्य प्रकाश का उदय हो जाता है। संत तुलसीदास जी के शब्दों में –

श्री गुरू पद नख मणि गणि जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

ध्यानाभ्यास में (योगसाधना में) व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि नौ प्रकार के विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, वे सभी गुरु कृपा से ही निवृत्त होते हैं। गुरु के समान ही इष्ट भी योगियों का सहायक है। जिसका कोई इष्ट है उसका कभी अनिष्ट नहीं होता। वह इष्ट सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही होना चाहिए।

सम्प्रज्ञात समाधि की अस्मितानुगत समाधि साध लेने पर योगी में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। सत्य को धारण करने वाली बुद्धि उसमें उदित हो जाती है। जिससे उसमें असंख्य चित्त निर्माण करने की शक्ति आ जाती है। अपने हजारों चित्त निर्माण कर अपने प्रधान चित्त के अधीन उन्हें नियन्त्रित रखकर वह एक साथ हजारों कार्य कर सकता है। वह किसी को उपदेश देता है, किसी की रक्षा करता है, एक ही समय में बहुत से स्थानों पर रहता हुआ साधकों की मदद करता है। उसमें दिव्य निर्माण की शक्तियाँ भी आ जाती हैं, वह जो कुछ चाहे तत्काल निर्मित कर देता है। इसके साथ ही उसमें निर्वाणोन्मुखी वृत्ति उत्पन्न होती है। जो सभी संस्कारों को जलाने के बाद अपने आपको भी जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार योगी परम ज्योति में लीन हो जाता है। यही योगियों का मार्ग है जो गुरु कृपा से प्रशस्त

निर्देश प्राप्त कर पार किया जा सकता है। मानव–जीवन के कर्णधार गुरुदेव हैं, मानवदेह सुन्दर नौका है, स्वयं भगवान सुन्दर अनुकूल वायु के रूप में मददगार हैं। इतना पाने पर भी यदि मनुष्य संसार–सागर को पार न करे तो वह आत्मघातीवत् दोष का भागी होता है। योगविद्या ही सर्वद्रष्टा व सर्वशक्तिमान् बनाने वाली विद्या है। प्रयास तत्काल आरम्भ करो और योग के क्षेत्र में अन्तर्जगत में प्रवेश कर जाओ। जो लोग इसके लिए प्रयास करेंगे उन्हें भगवान अवश्यमेव मदद देंगे।

■■■

तुम्हारा कर्तव्य

पालो व्रत ब्रह्मचर्य, विषै-वासनाएँ त्याग,
ईश्वर के भक्त बनो जीवन जो प्यारा है।
उठिये प्रभातकाल रहिये प्रसन्न-चित्त,
तजो शोक-चिन्ताएँ जो दुख का पिटारा है।।
कीजिये व्यायाम नित्य भ्रात! शक्ति-अनुसार,
नहीं इन नियमों पै किसी का इजारा है।
देखिये सौ शरद औ कीजिए सुकर्म 'रमा'
सदा स्वस्थ रहना ही कर्तव्य तुम्हारा है।।

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलालजी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

योगाचार्य डॉ. हासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस दिव्यता को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किंतु जन्म कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि संम्पन्न योगी जन ही इन रहस्यों को जानते हैं। योग अमर व अमृत विद्या है इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय-समय पर भगवान स्वयं प्रसार करते हैं या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार-प्रसार करते हैं। मध्य काल के भगवान मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पान्तजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारुणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष है।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही 'काकनाड़ी संहिता' में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गई है। आपका परमपावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 को चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्पंडित गंडाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई-कई महिनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, वर्षा कर देना आदि आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रगट रहने लगीं।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ

भगवान् ने महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानव मात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्य सिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दुःख द्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षरवाला यह नाम धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दुःख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताश्री ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वासों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्या अध्ययन करने लगे।

एक दिन एक छात्र ने चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए है। उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभु जी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गई। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। 'भैरवी चक्र' जैसे तान्त्रिक प्रयोगों से स्त्री–पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिए मिटा दी गई। आप पर भी कई तान्त्रिक प्रयोग हुए किंतु सब निष्फल रहे। तीर्थ यात्रा करते–करते आप श्रीवृन्दावन धाम आये। वहाँ समस्त ब्रज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दुःखी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सवाँई गाँव आये। गाँव में ठा. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव से बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्न तथा समाधि में बैठ सके। यहाँ श्री प्रभुजी दो–ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की– 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार त्याग दें, हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा– 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।'

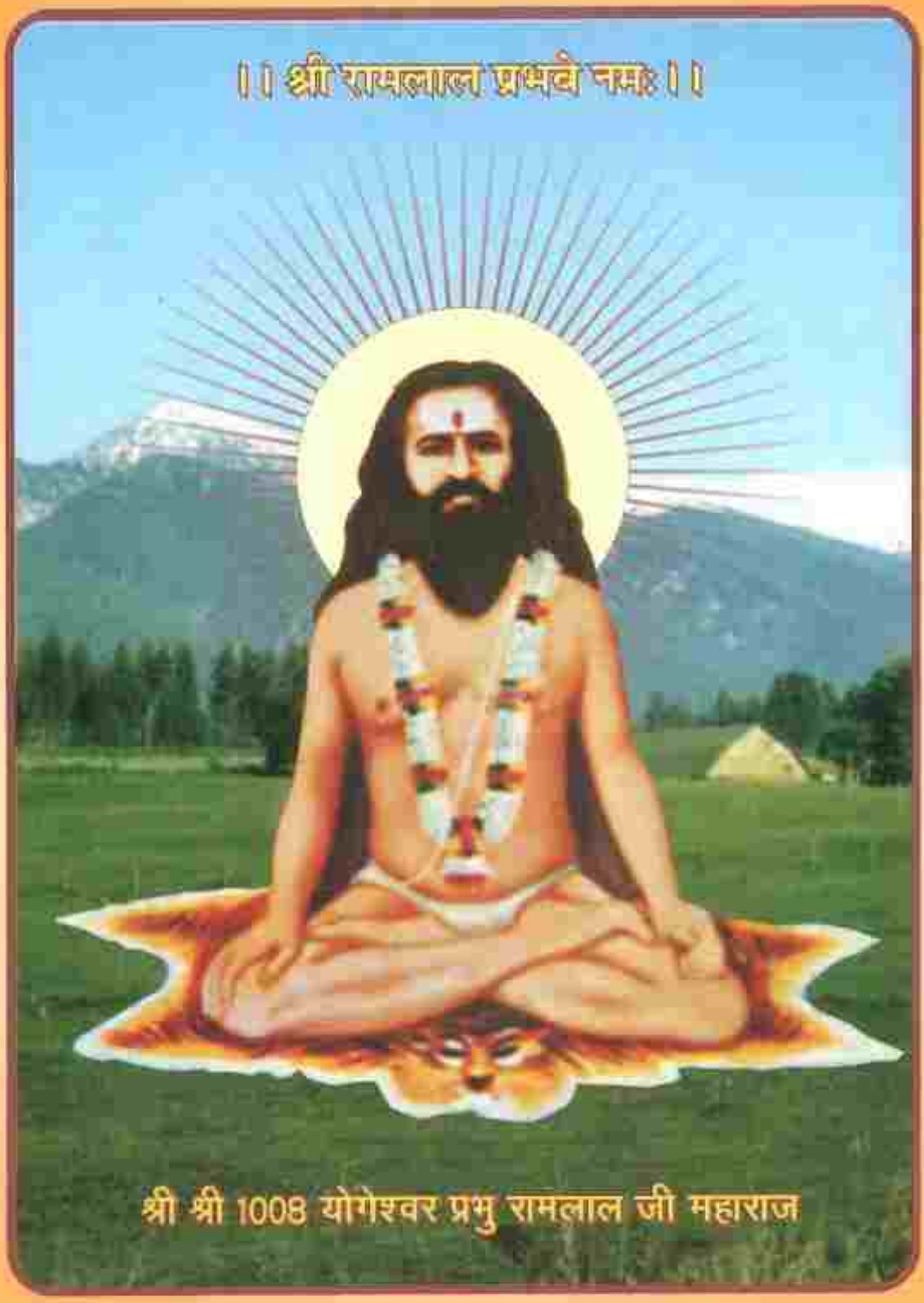
।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।
श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

एक दिन प्रात:काल की बेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा– 'हम गुफा वाले बाबा हैं। नेपाल हिमालय को जा रहे है।' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी। सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दु:खी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई– 'चिन्ता मत करो दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई– 'पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मभाव को पाकर मेरी थिति शक्ति में समा जायेंगे।'

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर विद्या योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन् 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उदघाटित की जो 'जीवन तत्व साधन' के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में अमृतसर में तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगी। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्‌भुत क्रियायें स्वत: ही होने लगती है।

आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरुढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश–विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। आपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है।' आपने अपने योग साधकों का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज सद्‌गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते है। गुरुगीता का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है–

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नम: श्री गुरुनाथाय हाविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात् श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सर्व व्यापक हैं परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्प्रभु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। वर्तमान युग में श्री प्रभुजी से ही सिद्धयोग परम्परा का सूत्रपात पुनः हुआ है। इसमें सिद्धगुरु के संकल्प मात्र से दिव्य क्रियायें स्वत: होती हैं। सत्य तो यह है कि गुरुकृपा के बिना योग विद्या का वास्तविक प्रकाश प्रकट नहीं होता है।

आनन्दकन्द करुणा वरुणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 122वाँ प्राकट्य दिवस 22, 23, व 24 मार्च 2010 को श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम समेत देश-विदेश में अत्यन्त हर्ष व उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। इस परम पावन वेला पर परम प्रभु के चरणों में कोटि-कोटि नमन है।

▣ ▣ ▣

जो भगवान् की मंगलमयी कृपा का आश्रय ले लेता है, भगवान् की कृपाशक्ति उसे सदा ही परम सुख की अनुभूति कराती रहती है। वस्तुतः सांसारिक वस्तु और स्थिति में सुख है ही नहीं, वह तो भ्रान्ति है और है आने वाली विपरीत वस्तु और स्थिति की दूसरी दिशा। इसे दुःख की पूर्वभूमि का भी कह सकते हैं।

भगवत्कृपा का पूर्ण आश्रय लेने पर सारी प्रतिकूलताएँ सदा के लिए अनुकूलता में परिणत हो जाती हैं, इसलिए दुःख भी सदा के लिए मिट जाते हैं- फिर सबमें सब समय अनुकूलता और सुख ही प्राप्त होता है, वस्तु का स्वरूप चाहे कैसा भी रहे-

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

कामाख्या की यात्रा में सतसंग लाभ

डा. विजय सिंह

मनुष्य की चेतना के अन्तःस्थल में स्मृतियों तथा संस्कारों के छिपे खजाने हैं। इससे भी सूक्ष्म में हमारे अन्तःकरण में व्याप्त प्राक्तन संस्कार छिपा रहता है। यहीं से शब्द की सत्ता अप्रकट से प्रकट हुआ करती है। ट्रेन द्रुत गति से गोहाटी की ओर नगरों, ग्रामों, प्रान्तों को छोड़ती दौड़ी जा रही है। लम्बी यात्रा परंतु महानुभव जैसा सहयात्री सद्गुरु कृपा से ही मिलते हैं। अपने बर्थ पर लेटा हुआ मैं सोच रहा हूँ यदि दिक न हो तो काल का पता ही न चले। काल तो निर्पेक्ष है। महाभारत में ठीक कहा गया है–

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ,
समेत्य च व्यपेयातां, तद्वद्भूत समाकामाः।

(शांतिपर्व)

ससार में लोगों का संग–साथ समुद्र में अचानक मिले काठ या अन्य वस्तुओं की तरह होता है, मिले और बिछुड़ गये। दस–बारह घण्टों की यात्रा और शेष है। सह–यात्री महानुभव भगवती कामाख्या के पीठ पहुँचने को उत्सुक हैं। हमें एकाध–घण्टे आगे गोहाटी जाना है। यह सब सोचकर मन पुनः महानुभाव से बात करने को उद्यत् हुआ।

मैं बोला – जीवन में भय का क्या स्वरूप है? इससे किस उपाय से मुक्त हुआ जा सकता है? वे उठकर बैठ गये और विचारपूर्ण मुद्रा में बोले– भगवान पतंजलि ने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पाँच प्रकार के क्लेश बताये हैं। अविद्या ही अन्य क्लेशों की जननी है। अभिनिवेश का मतलब पाये हुए का खो जाने का भय। भय के मूल में मृत्यु है। जिसका अनुभव किसी जीवित व्यक्ति को नहीं है। देहाभास रूपी अज्ञान ही सारे भयों की माँ है। हम अपने आत्मः स्वरूप में जब तक अवस्थान प्राप्त नहीं कर लेते इस भय–भूत से पीछा छुटने वाला नहीं है। जैसा कि जीवित को मृत्यु का अनुभव नहीं है। उसी प्रकार सारे भय व्यक्ति के मिथ्या कल्पना से पैदा होते हैं। भय काल्पनिक होकर भी यथार्थ रूप में दिखाई देता है। भय शंकाओं को जन्म देता है। मन शक्ति को क्षीण करता है। साधक को प्रकाश से हटाकर अन्धकार में ले जाता है। आपने उपाय पूछा है तो उपाय मात्र ईष्ट में, सद्गुरु में अटूट विश्वास। अपने आत्मशक्ति में विश्वास। भय के संकट को साधक सद्गुरु कृपा में विश्वास से सहज विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसे विश्वास से भय द्वारा मन के बंद द्वार को प्रभु मन से हजारों द्वार खोल देते हैं। यह विश्वास कि जहाँ ईष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता। साधक के

सभी भयों को निर्मूल कर देता है। मैं बीच में बोला– आप ठीक कहते हैं, जब भी तमाम शिष्यों एवं शिष्याओं का पत्र श्री सद्गुरु जी के पास आता तो एक ही उपाय लगभग सभी को श्री सद्गुरु जी पत्र में लिखवाते थे। वह यह कि "चिरन्जीव व सौभाग्यवती तुम जिन कठिनाइयों के बावत पत्र में लिखते हो इस हेतु, उठते बैठते, चलते–फिरते अपने गुरु मंत्र का जप करते हुए अनन्यभाव से श्री प्रभुजी के अभय चरण कमलों का चिन्तन करो वो परम कल्याण घन तुम्हारे कष्टों का निवारण अवश्य ही करेंगे।

महानुभाव ने अनुमोदन में सिर हिलाते बोले–

उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनिमय बचन तजहु कदराई।। सद्गुरु के बचन में विश्वास से धैर्य उत्पन्न होता है। धैर्य मनुष्य का सच्चा साथी है। गीता में दैवी सम्पदा के अन्तर्गत सद्गुणों के वर्णन में श्री कृष्ण जी अभय को सर्व प्रथम स्थान दिये हैं–

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम।। 1।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीर चापलम।।2।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।3।।

जो भय ग्रसित है उसमें सत्य बोलने, अहिंसा के पालन करने का सामर्थ्य भला कहाँ होगा?

भय मुक्त व्यक्ति ही स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकता है। योगी अथवा योग साधना के लिए निर्भय चित्त आवश्यक है। मैंने कहा– बिल्कुल आप यथार्थ कह रहे हैं। कबीर कहते हैं– शीर्ष दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान। कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर जारे आपना आवे हमारे साथ। सत्य है, अभय के बिना कोई सद्गुण न ठहर सकता है, और न पनप सकता है। भगवान जगदात्मा श्री कृष्ण जी ने कहा है–

प्रशान्तात्मा विगतभीब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्मय मच्चितो युक्त आसीत मत्परः।। 6–14।।

यहाँ प्रशान्तात्मा विगत भी का तात्पर्य जो भीतर शांत और निर्भय हो वही योगी हो सकता है। भयग्रस्त मानव का जीवन एक अभिशाप है। भयभीत व्यक्ति आध्यात्मिक हो ही नहीं सकता, ऐसा मैं समझता हूँ। भयभीत व्यक्ति न सत्य कह सकता है, न सत्याचरण कर सकता है। महात्मा गांधी का शायद यह कथन है कि "जहाँ भय है वहाँ धर्म भी नहीं टिक सकता है।" लेकिन एक प्रश्न मैं आपसे पूछता हूँ मानस में गोस्वामी जी ने किसी संदर्भ में

लिखा है "भय बिनु होइ न प्रीति' यह क्या बात है?

महानुभाव उन्मुक्त हास के साथ बोले– भगवान पातंजलि ने योग दृष्टि से मानवों का वर्गीकरण किया है न। मूढ़ अवस्था के प्राणी तमोवेसित होते है। छिप्तावस्था के प्राणी रजोवेसित होते है। समाज में अधिकांश प्राणी इन्हीं दो कोटि के है। विक्षिप्ता, एकाग्रता, निरोधावस्था के प्राणियों की संख्या इस कलिकाल में बहुत कम है। इनमें सत की मात्रा अल्प से पराकाष्ठा की ओर क्रम से बढ़ता जाता है। जो प्रश्न आपने किया उसका परिपेक्ष्य मूढ़ अवस्था अथवा क्षिप्ता अवस्था के प्राणियों के लिए है। आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं अपितु समाज–हित में पाप प्रवृत्त आततायीयों को अनुशासन और मर्यादा में रखने के लिए है। पाप–कर्म से हटाने के लिए ऐसे पशुभाव भावित लोगों को दण्ड भय पैदा करना आवश्यक हो जाता है। सच्चा अभयत्व में प्रतिष्ठित व्यक्ति में नम्रता होगा। वैराग्य से अंत: करण निर्मल होगा। 'तेन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु' उसके आचरण में है। सच तो यह है कि अभय आत्म साधना का प्राण बिन्दु है। ईश्वरान्वा में सहज अभय का भाव है। भय के मूल में मोह होता है। ज्यों–ज्यों साधक मंत्र मय मन वाला तथा ध्यान परायण होता है यह मोह बंधन शिथिलतर होता जाता है। विद्वान महानुभाव को एकाग्रता के साथ सुनता एवं मन में गुनता जा रहा हूँ। छोटे स्टेशनों को तिरस्कृत करता हमारी ट्रेन द्रुत गति से आगे भागती जा रही है। तभी अत्यन्त भाव से महाराज, महायोगी भर्तृहरि के श्लोक को सस्वर पाठ करने लगे।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं।
सर्व वस्तु भयान्वित भुवि नृणां वैराग्यमेभीवाभयंम।।

महानुभाव बार–बार वैराग्यमेवाभयम कहते हुए मेरे को सहास्य दृष्टि से देखते हुए बोले– भाई! यह उस मानव का कथन है जो महारानी पिंगला के रूप सौन्दर्य में आसक्त होकर श्रृंगार सतक की रचना किया। शौर्य पराक्रम में बेजोड़ राजनीति के मर्म को समझने वाला, नीति सतक की रचना किया। योगिराज गोरक्षनाथ के कृपा कटाक्ष से जब जीवन में योग–प्रतिष्ठा, हठयोग, अमरता प्राप्त हुआ तो अनुभवों का निचोड़ हम सबके लिए पथ पाथेय रूप में दे डाले।

1. सुख–भोग में अनेक शारीरिक व्याधियों का भय
2. कुलीनता के अभिमान पर कलंक का भय
3. धन–संग्रह होने पर शासन का भय
4. सम्मान प्राप्त होने पर अपमान का भय
5. मौन होने पर दीनता (अज्ञानता) का भय

6. सत्ता शक्ति प्राप्त होने पर शत्रु (बलवान) का भय

7. रूप–सौन्दर्य पर वृद्धावस्था की जर्जरता का भय

8. विद्वता होने पर वाद–विवाद में पराजय का भय

9. गुण विभूषित होने पर दुष्टों की दुष्टता का भय

10. शरीर का मोह होता ही है तो मृत्यु का भय रहेगा ही

अत: केवल वैराग्य ही जीव को भय मुक्त कर सकता है। अब आपका समाधान हुआ? उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहा– शब्द परितोष हुआ परंतु अभयता का परिपक्व आम्ररस का आस्वादन तो अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा ही सम्भव है। अखिल लोक पावन जगदात्मा श्री कृष्ण के द्वारा चंचल मन को रोकने का उपाय भी तो अभ्यास एवं वैराग्य ही बताया गया है– 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते' गीता में चित्त निरोध हेतु अभ्यास पर बार–बार जोर दिया गया है। 'अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्य गामिना।' 'अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।'

महानुभाव सहज भाव से बोले– साधक को गीता में वर्णित दैवी सम्पदा का विकास मंत्र जप द्वारा सद्गुरु चरणों में, इष्ट के भाव में समर्पण द्वारा करना चाहिए। सचेष्ट रूप से आत्मावलोकन करके देखे उसमें अभय, अन्त: करण की विमलता, सात्विक दान की प्रवृत्ति, इन्द्रिय आवेगों का दमन, पुण्य कार्य, स्वाध्याय तप, विनम्रता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, सेवा शान्ति अपैशुन (निन्दा न करना), प्राणियों के प्रति करुणा, असंग उचित लज्जा (शील), अचपलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी के प्रति शत्रुभाव न होना। अपने को पूज्य न समझना यह सब सद्गुणों का विकास शनैः शनैः हो रहा है या नहीं। इन्हीं प्रमाणों पर आत्मानुभाव की नींव पड़ती है। जब परिपूर्णता की ओर परिपक्वता आयेगी तब हम भी कबीर की तरह स्वस्फूर्त कह सकेंगे–

मन ऐसो निर्मल भयो जस गंगा को नीर।
पीछे–पीछे हरि चलें कहत कबीर कबीर।।

कम्पार्टमेण्ट में अचानक फेरी वालों का शोर होने लगा। चाइनीज टार्च पेन, इलेक्ट्रानिक के सामान आदि लिये घुस आये थे। व्यवधान हुआ।

■■■

भारत में गौवंश का संरक्षण क्यों?

मेजर आर.सी. मिश्र

''गाय बचेगी तो मनुष्य बचेगा वह नष्ट हुई तो इसके साथ हम सभी अर्थात् प्रकृति पशु–पक्षी पर्यावरण रक्षण और हमारी सभ्यता नष्ट हो जायेगी।''

– महात्मा गाँधी

भारत में गौ को माता के रूप में माना गया है। धार्मिक ग्रन्थों, संत पुरुषों तथा समाज सेविको ने गौ रक्षा को धर्म के साथ जोड़ा है। –गोमये वसते लक्ष्मी:' कह कर गोबर की प्रशंसा की गई है। गौ के रोम–रोम में देवताओं का वास बताया गया है। 'विप्रधेनु सुर सत हित, लीन्ह मनुज अवतार' कहकर भगवान के अवतरित होने का कारण गौरक्षा बताया गया है।

पिछले दो दशकों में कृषि के मशीनीकरण के कारण बैलों का महत्व कम हो गया है। छोटे किसानों को बैलों का पालना आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं रहा है। त्रुटिवशगौसम्बर्धन के कारण घटिया किस्म की गायों की संख्या बढ़ रही हैं, जो काफी कम मात्रा में दूध देती हैं तथा उसके बछड़े भी विशेष उपयोगी नहीं हैं। गाय का दूध बहुत से लोग पीना पसन्द नहीं करते क्योंकि इसमें बसा का प्रतिशत कम होता है। इसी कारण गाय के दूध का बिक्री, मूल्य भी भैंस के दूध से काफी कम है।

मनुष्य गाय के दूध का महत्व नहीं समझता जबकि वैज्ञानिकों के मतानुसार गाय के दूध में 8 प्रकार के प्रोटीन, 6 प्रकार के विटामिन, 21 प्रकार के अमीनोएसिड, 11 प्रकार के चर्बी युक्त एसिड, 25 प्रकार के खनिज तत्व, 18 प्रकार नाइट्रोजन, 4 प्रकार के फासफोरस यौगिक एवं दो प्रकार की शर्करा होती है। गौ दुग्ध में विद्यमान 'सेरिब्रोसाइड्स' मस्तिष्क और स्मरण शक्ति विकास में सहायक है। गाय के दूध में रेडियो विकरण से रक्षा करने की सर्वाधिक शक्ति होती है। गौदुग्ध एवं गौघृत के प्रयोग से मनुष्य के शरीर में कोलस्ट्राल नहीं बढ़ता है। गाय की रीड़ में सूर्यकेतु नाड़ी होती है जो सूर्य प्रकाश में क्रियाशील होकर पीले रंग का पदार्थ छोड़ती है जिसके कारण गाय का दूध पीले रंग का (कैरोटीन) का होता है। यह कैरोटीन तत्व सर्वरोग नाशक व सर्वरोग विनाशक होता है।

संक्षिप्त में कह सकते हैं कि (1) गौ राष्ट्र के अर्थतन्त्र का मेरुदण्ड है। (2) गौ स्वास्थ्य का आधार है। (3) गौ हमारी ग्रामीण समृद्धि का श्रोत है। (4) गौवंश भारतीय कृषि विकास की आधार शिला है। (5) गौवंश ऊर्जा का अनन्त श्रोत है। (6) गौवंश ग्रामोद्योग/कुटीर उद्योगों का आधार है क्योंकि गौवंश के मूत्र व गोबर से विभिन्न प्रकार की दवाईयां, कीटनाशक साबुन,

फिनायल आदि बनाये जाते है।

कुल गौवंश की आबादी का लगभग 6.5 प्रतिशत माँस के लिए वध किया जा रहा है। क्योंकि भारतीय गौवंश के माँस की विदेशों में बहुत माँग है। इस समय किसान केवल उन्हीं गौ पशुओं को पालना चाहता है जो आर्थिक रूप से लाभकारी है। अलाभकारी गौ पशुओं को किसान कसाइयों को बेंच देता है या उनको खुला छोड़ देता है, जो कसाईयों के पास पहुँचकर वध कर दिए जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से गौ पशुओं की संख्या तीव्रता से घटती जा रही है।

गौरक्षा पूरी तरह तभी संभव हो पायेगी जब उसकी उपयोगिता दूध पर आधारित न होकर उनके अन्य उत्पादों गोबर, गौ मूत्र आदि पर हो। अनुत्पादक गाय भी उत्पादक है। बूढ़े गाय बैलों पर जितना खर्च होता है उससे अधिक धन किसान भाई निम्न उत्पादों को बनाकर प्राप्त कर सकते है।

1. **गौमूत्र** – गौमूत्र में उपस्थिति कुल फिनौल, पैराक्रिसोल, कैटेकोल, आरसीनोल, हेलोजनेटिड फिनोल एवं फिनाइल फिनौल का मिश्रण होता है। यह सभी तत्व जीवाणु नाशक, विषाणुनाशक एवं कवक नाशक होते हैं। अतः इनकी उपस्थिति में गौमूत्र एक अत्यंत प्रभावशाली एंटीबायटिक के रूप विभिन्न रोगों में उपयोगी हैं। गौमूत्र से हम घर पर आसानी से गौअर्क, फिनाइल बनाकर लाभ अर्जित कर सकते हैं।

(1) **गौअर्क**– गौमूत्र को वाष्पीकृत करके गौअर्क तैयार किया जाता है। यह स्वस्थ मनुष्य के लिए टानिक के रूप में कार्य करता है। इसका सेवन मनुष्य की प्रत्येक बीमारी में लाभप्रद है। स्वस्थ्य बछिया का भी गौमूत्र लेकर 7–8 कपड़ा की परतों में छान कर गौमूत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार गौअर्क/गौमूत्र से गोपालक धन अर्जित कर सकता है। बहुत सी गौशालायें गौअर्क/गौमूत्र बेच कर अपने पैरों पर खड़ी हो गयी।

(2) **फिनाइल**– गौमूत्र में अन्य घटक मिलाकर हम फिनाइल तैयार कर सकते हैं। दस लीटर फिनाइल के लिए सामग्री– गौमूत्र 4 लीटर, राजन 200 ग्राम, अण्डी तेल 250 ग्राम, क्रेजुएट आइल 3 लीटर, कार्बोलिक एसिड 50 ग्राम, एम.सी.पी. 50 ग्राम, कास्टिक 50 ग्राम एवं पानी 3 लीटर।

(3) **पेस्टीसाइड**– गौमूत्र के द्वारा बनाया गया कीटनाशक विभिन्न फसलों को कीटों से बचाता है साथ ही फसलों को पोषक पदार्थ भी देता है। दस लीटर कीटनाशक बनाने की सामग्री– गौमूत्र 12 लीटर, नीम की पत्ती 2 किलो ग्राम, धतूरा फल 10 नग, तम्बाकू 100 ग्राम, नीम तेल 500 मि.ली., लहसुन 50 ग्राम, हरसिंगार की पत्ती 100 ग्राम एवं भटकटईया 100 ग्राम। उपरोक्त सभी अवयवों को गौमूत्र में उबालकर ठण्डा करके तथा बीस गुना पानी मिलाकर फसल पर छिड़काव करते हैं।

2. **गोबर** – गाय का गोबरप पोषक, शौधक, दुर्गन्धनाशक, बलवर्धक तथा

क्रान्तिदायक है। गोबर से विभिन्न उत्पाद बनाकर धन अर्जित किया जा सकता है।

(1) **खाद** – नाडेप पद्धिति के द्वारा हम एक किलो ग्राम गाय के गोबर से 20 किलो ग्राम कम्पोस्ट बना सकते हैं। इस प्रकार से एक पशु से प्रतिवर्ष 10 से 12 हजार रुपये की कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है।

(2) **सींग की खाद**– मृत्यु दुधारू गाय की सींग में ताजा गोबर भर कर भूमि में 6 माह गाढ़ कर रखने से सींग खाद तैयार हो जाती है भूमि में गाढ़ते समय सींग का ऊपरी सिरा ऊपर की तरफ रहेगा। 35 ग्राम खाद एक एकड़ के लिए पर्याप्त होती है।

(3) **जीव मृत खाद**– इसे गाय के गोबर, गौमूत्र, दाल का आटा, दही व गुड़ को मिलाकर बनाते है।

सामग्री– 1. गाय का गोबर 60 किग्रा 2. गौमूत्र 10 लीटर 3. किसी दाल का आटा 2 किग्रा. 4. दही 2 किग्रा. 5. गुड़ 2 किग्रा.। उपरोक्त मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर 3–4 दिन रखें तथा 200 लीटर पानी मिलाकर एक एकड़ क्षेत्र में बुवाई के समय बिखेरें/छिड़कें इससे खेत में असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि होती है जिससे फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। इस प्रकार गोबर और गौमूत्र से विभिन्न उत्पाद बनाये जा सकते हैं।

▣▣▣

जन्म-मरण का कार्य (जनसंख्या का नियन्त्रण) मनुष्य के हाथ में नहीं है, प्रत्युत सृष्टि की रचना करने वाले ईश्वर और प्रकृति के हाथ में है। ईश्वर और प्रकृति के विधान से जनसंख्या का नियन्त्रण अनादि काल से स्वतः -स्वाभाविक होता आया है। अगर मनुष्य उनके विधान में हस्तक्षेप करेगा तो इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

श्री प्रभुजी की कृपा! वरद् हस्त! काल परे टरे!

राजीव कुमार, ऊना (एच.पी.)

अनादि सिद्ध! महायोगेश्वर! महाप्रभु श्री सिद्ध गुफा वाले!
युग चक्र! काल चक्र! जग चक्र! एक साथ घुमाने वाले!

ब्रह्माण्ड का आदि, मध्य, अन्त संभाले, बाबा! नेपाल वाले!
देव–ऋषि आरती उतारे! योग–गंगा अविरल बहाने वाले!

महा–सिद्ध! कहलाते जटा–जूट दाड़ी वाले!
पतितो के संस्कार कुचक्र टालने वाले!!

'श्री सिद्ध–योग' अखंड योग का अलख जगाने वाले!
श्री चन्द्रमोहन जी! 1008 श्री अलुपुर हरियाणा वाले!!

अटूट श्रद्धा विश्वास से भक्त जन संवाई धाम आते!
जिसकी जैसी होती भावना! वैसा ही फल पाते!!

अखिलेश्वर का महापर्व! जन्मोत्सव श्री राम नवमी!
सभी गुरु–भाईयों का सुखधाम! संवाई गुफा भूमि!!

आओ! श्री अखंड ज्योती का जन्मोत्सव मना ले!
श्री सिद्ध योग प्रचार– करा जीवन सफल बना लें!!

श्री सिद्धगुफा रज–प्रसाद से लाखों जीव तरे!
श्री प्रभुजी की कृपा! वरद! हस्त! काल परे टरे!!

▣▣▣

श्री गीतामृत - पदावली

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

गतांग से आगे

जिससे देखूँ इन वीरों को, युद्ध हेतु जो आये आज।
और साथ में किनसे मुझको लड़ना होगा हे यदुराज।। ।।22।।

देखूँ उन वीरों को भगवन्, आये हैं जो लड़ने को। ।।23।।
बुद्धिहीन धृतराष्ट्र-तनय के, जो आए हित-करने को।।

संजय उवाच

हृषीकेश ने तब, हे राजन्!, अर्जुन के यों कहने पर।
सैन्यद्वय के मध्य भाग में, उत्तम रथ को स्थित कर।। ।।24।।

बोले कृष्ण, जहाँ सम्मुख थे, भीष्म, द्रोण औ' नृपति सभी।
देखो अर्जुन! कौरवगण को, जो हैं आगे खड़े अभी।। ।।25।।

वहाँ खड़े अर्जुन ने देखे, पिता, पितामह, गुरुवर भी।
मामा, भाई, पुत्र, पौत्रगण, सम्बन्धी भी अन्य सभी।। ।।26।।

देख! उभय सेनाओं में तब, ससुर सुहृद भी खड़े अनेक।
तथा बन्धु-बान्धव भी अगणित रहा पार्थ को नहीं विवेक।। ।।27।।

अर्जुन ने कहा

करुणा से उद्विग्नहृदय हो, बोल उठा वह वीर सशोक।
लड़ने को तत्पर जब देखे, स्वजन, मित्रगण, अगणित लोग।। ।।28।।

सूखा जाता है मुख मेरा, शिथिल हुए मेरे सब अंग।
काँप रहा है सब तन मेरा, रोमांचित है मम प्रत्यंग।। ।।29।।

गिरता है गांडीर्व हाथ से, सब तन मेरा झुलस रहा।
मन अशांन्त है, धैर्य रहित हूँ, रह सकता मैं नहीं खड़ा।। ।।30।।

हे केशव! मैं देख रहा हूँ, सभी लक्षणों को विपरीत।
हनन बन्धु का रण में करके, सुखद न दिखती है यह जीत।। ।।31।।

इच्छा नहीं राज्य की मुझको, व्यर्थ मुझे सुख भोग सभी।
रहा, प्रयोजन क्या अब इनका, मुझको इस जीवन का भी।। ।।32।।

राज्य–भोग, सुख की अभिलाषा, जिनके लिए रही मन में।
धन, जीवन, का मोह त्याग कर यहाँ खड़े हैं वे रण में ।। ।।33।।

गुरुजन, पिता–पुत्रगण हैं ये, तथा पितामह वीर महान।
ससुर, पौत्र, मामा, साले हैं, सम्बन्धी ये सभी समान।। ।।34।।

नहीं चाहता इन्हें मारना, मैं ही यदि मारा जाऊँ।
इस धरणी का भला राज्य क्या, तीन लोक का यदि पाऊँ।। ।।35।।

क्या सुख मुझे मिलेगा यदि मैं, कौरव कुल के प्राण हरूँ।
आततायियों का बध कर, पाप पंक, क्यों शीश धरूँ।। ।।36।।

अतः मुझे यह उचित नहीं है, कौरवगण का करना घात।
भला, स्वजन की हत्या करके सुख कैसे पाऊँगा तात।। ।।37।।

देख नहीं सकते हैं ये सब, हुए लोभ से बुद्धि-विहीन।
वंश-नाश के दोषी होंगे, पापी मित्र-द्रोह में लीन।। ।।38।।

पाप कर्म से हट जाने का कहो न कैसे करूँ विचार।
कुल विनाश के महापाप का कैसे देखूँ अत्याचार।। ।।39।।

सभी पुरातन कुल-धर्मों का, कुल-विनाश से होता अन्त।
हो जाने पर लोप धर्म का, कुल में होते पाप अनन्त।। ।।40।।

ह्रास धर्म का होने परतो, हो जाती दूषित नारी।
दूषित नारी जननी बनतीं, संकर संतति की सारी।। ।।41।।

कुल को, कुलघातक को संकर, ले जाता है नरक जहाँ।
पिण्डोदक से वंचित होकर, गिर जाते हैं पितर वहाँ।। ।।42।।

(शेष अगले अंक में)

गुरु कृपा लीला

जगदीश राए बंसल, दिल्ली

लेखनी तेरी, लेख भी तेरा, तेरा ही गुणगान।
मैं तो धौंकनी लोहार की, सांस लेत बिन प्राण।।

योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई धाम से सम्बन्धित हमारे आदरणीय गुरु भाई बहिन अपने आनन्द कन्द श्री सद्गुरु देव जी महाराज के लाड़ले पार्षद आदरणीय गुरु भाई श्री पुष्कर दत्त शर्मा से अवश्य परिचित होंगे। श्री पुष्कर जी हरियाणा प्रान्त में जिला सोनीपत के अन्तर्गत गांव धनाना के रहने वाले हैं। धनाना गांव के बारे में आपको याद दिला दें कि यहाँ पर अपने आराध्यदेव जी महाराज अपनी पूज्य बुआजी के पास आते रहते थे। कभी-कभी महिने से भी अधिक रह कर कीर्तन सत्संग, आरती किया करते थे।

फूल जहाँ भी खिले, सुगन्ध ही फैलाता है।
समां कहीं भी जले, उजाला हो ही जाता है।।

अतः इस भाग्यशाली गांव के अधिकतर निवासी श्री गुरुदेव भगवान जी से परिचित एवं दीक्षित हैं। परिणामतः आदरणीय श्री पुष्कर जी को अपनी अल्पायु से ही श्री गुरु चरणों में अगाध प्रेम होने का सौभाग्य प्राप्त है। श्री पुष्कर जी समत्व भाव सरल बुद्धि एवं मृदु भाषी व्यक्तित्व के साधक हैं। अपने करुणा निधान जी महाराज प्रेमवश उन्हें पोरवर भी कह कर पुकार लेते थे। आजकल श्री पुष्कर जी अपने भाग्य विधाता की जन्म स्थली श्री अलुपुर धाम में सेवारत हैं। अलुपुर धाम के विषय में यह सर्वविदित है कि सर्वसमर्थ्य गुरुजी के प्राकट्यविशेष भू स्थल पर मरा पूरा स्वतः उत्पन्न पीपल का वृक्ष है और साधकों द्वारा निर्मित गुरु जी का दिव्य मन्दिर है। स्थानीय प्यार से हम श्री पुष्कर जी को 'दादा पोहकर' के नाम से भी पुकार लेते हैं। अपने दया सागर महाराज जी की श्री पुष्कर जी पर अनन्त कृपाऐं हैं। इनमें से एक लीला का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

यह लीला प्रसंग सम्भवतः सन् 1966-67 के आस-पास का है। दादा गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के जन्मोत्सव रामनवमी के महा मेला में धनाना गांव से दादा पोहकर के ज्येष्ठ भ्राता सहित 35-40 जिज्ञासु सवांई धाम पधारे थे। चैत्र शुल्का सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तिथियों में यह अवतारोत्सव, अपेन गुरु देव भगवान योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने बड़े धूम-धाम से मनाया था। कुछ आगंतुक श्रद्धालु तो नवमी को ही प्रस्थान कर गए थे। कुछ अगले दिन जाने का मन बना रहे थे। दसवीं तिथि को प्रथम चरण का कार्य कीर्तन, आरती, प्रवचन एवं अल्पाहार आदी सब आनन्दमय सम्पन्न हुआ। मगर

शीघ्र ही श्री पुष्कर जी के ज्येष्ठ भ्राता श्री ने अपना समूह संगठित करके एक मीटिंग में अपने अनुज पुष्कर जी के प्रति तेवर बदल लिए। योजनानुसार श्री पुष्कर जी को अपनी मीटिंग में बुला कर कड़ी तड़ना दी कि 'तू यहाँ मौज मस्ती में फिरता है गांव में तेरा परिवार, तेरे पशु, तेरी खेती, सब कुछ बर्बाद हो रहा है। तेरा एक मात्र पुत्र परीक्षा में फेल हो गया है और वह कुसंगति में बैठता है.....।" किसी ने कहा कि :–

बात बतंगड़ ज्यों बनत, तिल ज्यों बनत ताड़।
बात बढ़ा कर कोई कहे, तब राई बनत पहाड़।।

परिणामत: मिटिंग में फरमान सुना दिया कि 'पोहकर को हमारे साथ गांव में चलना पड़ेगा। वरना हम कब तक तेरा क्या–क्या करते रहेंगे? आगे के लिए हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं.....।" इस प्रकार से घनाना मण्डल का क्रोध एक साथ फूट पड़ा। यह तक समझना कठिन हो गया कि कौन क्या कह रहा है? आदरणीय ज्येष्ठ भ्राता श्री तो मारने पीटने तक का विचार किए लगते थे। अब श्री पुष्कर जी का यह हाल हो गया कि श्री मद्भागवत् गीता के एक श्लोक की लाइन याद आती है:–

सोदन्ति मम गात्राणि, मुखं च परिशुष्यति।
वेप थुश्च शरीरे मे, रोम हर्षश्च जायते।।

कहने का तात्पर्य है कि श्री पुष्कर जी बहुत घबरा गए, यहाँ तक कि रोमांच हो आया। मगर श्रद्धेय गुरु भाई श्री पुष्कर जी का दिल हिमालय की तरह अडिग और चट्टान की तरह पक्का रहा। इसलिए

न वकील – न दलील – न अपील

अर्थात् न तो श्री पुष्कर जी की पैरवी में किसी ने कोई बचाव किया। न श्री पुष्कर जी ने प्रत्युतर में किसी को कोई दलील दी। और न ही श्री सद्गुरु जी के तेजांश इस वीर ने अखिल ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराजा के श्री चरणों में प्रत्यक्ष रूप से कोई अनुनय विनय की अपील की। अपितु परोक्ष रूप से मौन समर्पण एवं आर्त पुकार में कोई त्रुटि नहीं रखी। सन्त शिरोमणि श्री तुलसीदास जी महाराज ने कहा है कि:–

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घन श्याम हित, चातक तुलसीदास।।

इसी उहा–पोह के चलते एवं आश्रम की व्यस्त दिनचर्या के मध्य सूर्यास्त होते देर न लगी। सांय काल इस घनाना श्रद्धालु भक्त मण्डल को टूण्डला रेलवे स्टेशन से दिल्ली जाने वाली रेलगाड़ी पकड़नी थी। चलते समय आदरणीय ज्येष्ठ भ्राता श्री ने आदेशात्मक स्वर में श्री पुष्कर जी से कहा 'चल, उठा अपना थैला।" समय की नजाकत को देखते हुए श्री पुष्कर जी को समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करूं?

एक तरफ कुँआ, एक तरफ खाई

परिणामतः धनाना मण्डल दबाव के चलते एवं ज्येष्ठ भ्राता के अक्रोश के सामने किंकर्तव्य विमूढ़ात्मा की भांति श्री पुष्कर जी के कदम उनके साथ बढ़ चले। बढ़ते कदमों के साथ गौन प्रार्थना की गहराई भी बढ़ने लगी। प्रार्थना के कुछ अंश पंक्तिबद्ध हैं:–

गुरु जी मेरी, चरण लगन मत तोड़ना,
दाता जी मुझे, भ्राता संग मत जोड़ना,
पड़ा रहूं शरण में, पकड़ा हाथ मत छोड़ना,
पल्ला पकड़ा मुक्तिधाम का, नाता कभी मत तोड़ना,
बात का बतंगड़ है ये, मुझ से मुख मत मोड़ना,
घर खेती तेरे हवाले, मेरे हवाले मत छोड़ना,
गुरु जी.....

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जिस–जिस भाग्यशाली विजेता ने कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले अखिल ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव जी महाराज को तत्व से पहचाना है अथवा निकट से जाना है तो उस श्रृंखला की श्री पुष्कर जी भी एक अहम कड़ी हैं। क्योंकि वयोवृद्ध दादा पोहकर को त्रिलोक पावन करुणा निकेतन गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के एकांकी संघ के अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं। अब अपने मूल विषय पर लौटते हैं।

टूण्डला रेलवे स्टेशन पर पहुँच कर, मण्डल प्रमुख ने टिकटें खरीद लीं और योजनानुसार श्री पुष्कर जी के हाथ में थमा दी। श्री पुष्कर जी के हाथ ने साइड वाली जेब में छोड़ दी। प्लेट फार्म पर जाकर पता चला कि यह रेलगाड़ी अपने निर्धारित समय से लेट चल रही है। बढ़ते समय के साथ–साथ श्री पुष्कर जी की धड़कन भी बढ़ने लगी। अनन्तः ट्रेन आ कर रुकी। गाड़ी में अनुमान से अधिक भीड़ थी। यात्रियों की गाड़ी में सवार होने की होड़–सी लग गई। इसी कोतुहल के मध्य श्री पुष्कर जी के उस हाथ ने टिकटें जेब से लेकर गाड़ी में सवार होते मण्डल के एक भक्त के हाथ में पकड़ा दीं। लेट आई गाड़ी शीघ्र ही अपनी करतूत पर धूल उड़ाने लगी। गाड़ी की रफ्तार के साथ ही श्री पुष्कर जी की दिन भर चली चिन्ता की भी इति श्री हो गई। अपने गुरु जी प्रवचनों में समझाया करते थे कि :–

संस्कार संस्कार को जन्म देता है।

अतः अब श्री पुष्कर जी को एक नई चिन्ता सताने लगी कि बिना गुरु आज्ञा के इतने समय तक ओझल रहना, आश्रम नियमों के विरूद्ध है। अब कैसे आश्रम में जाऊँगा? कैसे मुख दिखलाऊंगा? क्या कारण बतलाँऊगा? गुरु जी बहुत नाराज हुए होंगे, मुझे फटकार खानी पड़ सकती है। इस प्रकार से श्री पुष्कर जी स्वयं को धिक्कारते हुए, रात को समय देर

से आश्रम पहुँचे। गुरुदेव जी महाराज विश्राम के लिए जा चुके थे। अनावश्यक लाइट शान्त थी। पुष्कर जी अपनी उपस्थिति छिपाते हुए, चुप–चाप जा कर अपने बिस्तर पर लेट गए।

अगले प्रातः जब श्री पुष्कर जी भोर में जाग उठे, तब त्रिजगत पावन सर्व सामार्थ्य गुरु जी महाराज के कक्ष की लाइट जल रह थी। श्री पुष्कर जी को जिज्ञासा हुई कि देख लूं गुरु जी क्या कर रहे हैं? अतः शनैः–शनैः बिन पद चापन के खिड़की से स्वयं को बचाते हुए एक आँख द्वारा क्षण भर में ही देख लिया कि जगत नियन्ता पल–पल के ज्ञाता कुछ कागजी कार्य में व्यस्त हैं। अब श्री पुष्कर जी यह विचार कर झट से वापस मुड़े कि शीघ्र शौच से निवृत होकर लौट आऊँ, फिर आते ही दैनिक सेवा में जुट जाऊँगा। लेकिन जैसे ही आराध्य देव के तेजांश श्री पुष्कर शीघता से मुड़े तो उनका बांया कन्धा एक दांए कन्धे से टकराया। यह क्या? आश्चर्य महान आश्चर्य! साक्षात् गुरु देव भगवान जी! श्री पुष्कर जी ने उसी क्षण खिड़की से अन्दर देखा तो वहाँ भी सर्वव्यापी यथावत् उसी कार्य में व्यस्त हैं। अकस्मात् पुष्कर जी के मुख से निकला – 'गुरुजी! आप दो हो गए? प्रत्युत्तर में ब्रह्माण्ड नायक पतित पावन, सिद्धेश्वर जी महाराज बोले, 'हाँ लल्ला हम दो हो गए।' इससे पहले कि श्री पुष्कर जी प्रणाम करते, पलक झपकते ही त्रय लोक पावन, भक्त भय हारी अन्तर्ध्यान हो चुके थे। इस प्रकार अकारण दयालु, अनाथ नाथ, जगत नियन्ता ने अपने आत्मांश भक्त श्री पुष्कर जी को निर्भय कर कृतार्थ किया। इस समय अपने एक आदरणीय गुरु भाई के भजन की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं। परंतु पहले दादा पोहकर जी द्वारा यह गुरु महिमा सुनाने के लिए कोटि–कोटि धन्यवाद एवं पाठक गणों को जय गुरु देव।

मेरे गुरु जी संवाई वाले, सबका दुःख हरते हैं।
सिद्ध गुफा है धाम मगर, सबके दिलों में रहते हैं।
बच्चे किस हाल में हैं, वे देखते रहते हैं।
बच्चों के भावों को, वे पूरा करते रहते हैं।

■■■

जिसमें राग हो जाता है, उसमें दोष नहीं दीखते और जिसमें द्वेष हो जाता है, उसमें गुण नहीं दीखते। राग-द्वेष से रहित होने पर वस्तु अपने वास्तविक रूप से दीखती है।

श्री रामलाल महाप्रभु जी द्वारा

बालकों को आकर्षित करके निहाल करना

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

परम कृपा निकेतन सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने परम कृपा करते हुए हिमालय के बर्फ आच्छादित ऊँचे शिखरों को जनकल्याण व योग प्रचार के लिए त्याग दिया और अपने संस्कारी जीवों को सिद्धयोग का दान देने के लिए मानव बस्तियों में यत्र-तत्र भ्रमण करने लगे। वह परम कृपा निकेतन श्री रामलाल महाप्रभु अपने संस्कारी बालकों को पहले देखते कि हमारे संस्कारी बालकों ने कहाँ-कहाँ पर जन्म धारण कर रखे हैं। फिर वह उनको आकर्षित करते और अपनी शक्ति के द्वारा श्री चरणों में आने के लिए सारा मार्ग उपलब्ध कराते और स्वप्न या प्रत्यक्ष में प्रकट होकर उनको प्रेरणा देते कि अब तुम हमारे पास चले आओ जैसा कि अपने शिष्य मुलखराज जी के विषय में श्री रामलाल महाप्रभु जी ने किया। एक समय कृपा निकेतन महाप्रभु श्री रामलाल जी कांग्रेस का जुलूस देखने के लिए मार्ग में खड़े हो गये इतने में एक नवयुवक हाथ में तिरंगा झण्डा लिए यह गाता हुआ सामने से निकला 'हिन्द दा तख्तो ताज असा नहीं छड्ना। परम कृपा निकेतन की दृष्टि इस बालक पर पड़ी और मन में भारी प्रसन्न हुए और उस बालक से पूछा बेटा तुम्हारा जन्म इस समय कहाँ है। श्री रामलाल महाप्रभु जी ने उस समय विदेशी कपड़ों से बने कपड़े पहने थे तो देखकर वह बालक बोला पहले यह विदेशी कपड़े उतारकर आओ फिर हमसे बात करना। श्री रामलाल महाप्रभु जी तो प्रसन्नमन से अपने निवास पर लौट आये उनकी प्रसन्नता का राज जब अन्य सतसंगी बालकों ने जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि आज हमने अपने एक संस्कारी बालक को अमृतसर में देखा वैसे तो वह हमारी शरण में नौ वर्ष पश्चात् आता पर हमारी दृष्टि अब उस पर पड़ गई है तो वह नौ वर्ष का संस्कार नौ दिन में पूरा करके ठीक नौवे दिन यहाँ आ जायेगा। ठीक नौवे दिन श्री मुलखराज जी जन्म पत्री दिखाने श्री रामलाल महाप्रभुजी के पास अनायास ही पहुँच गये थे।

महाप्रभु श्री रामलाल जी के योग्यतम प्रिय बालक श्री चन्द्रमोहन जी जब अमृतसर में विद्या अध्ययन करते थे तो उसी समय शिवालय में तीव्र संवेग से अनुष्ठान किया था तब वहाँ श्री रामलाल महाप्रभु जी ने स्वप्न में प्रकट होकर यह कहा कि तुम हमारे पास चले आओ बालक चन्द्रमोहन जी उस समय ।। या बारह वर्ष के रहे होंगे उन्होंने कहा कि मैं कहाँ चला आऊँ मुझे तो कुछ भी पता नहीं है। इसके बाद दो तीन बार श्री महाप्रभु जी के दर्शन और हुए वह कुऐं पर बैठे थे उन्होंने इनको भी जल पिलाया और दूसरी बार उन्होंने कहा अब तुम चले आओगे। ऐसा ही हुआ। कुछ दिनों बाद एक पुस्तक विक्रेता के यहाँ स्वामी मुलखराज जी से

श्री चन्द्रमोहन जी की भेंट हो गई और स्वामी मुलखराज जी ने श्री रामलाल महाप्रभुजी का पता बता कर कहा कि परम प्रभु इस समय ऋषिकेश में विराजमान हैं। श्री चन्द्रमोहन जी जो उस समय बालक ही थे, योग साधन आश्रम ऋषिकेश में श्री रामलाल महाप्रभु जी के चरण कमलों में पहुँच गये इनको देखते ही श्री रामलाल महाप्रभु जी ने कहा ' क्यों तुझे रास्ता मिल गया ना, तू तो कहता था कहाँ आऊँ कैसे आऊँ, बुला लिया ना हमने। महाप्रभु श्री रामलाल जी के प्रादुर्भाव की अनेकों विशेषतायें रहीं उनमें से एक यह भी है कि उन्होंने किसी दिखावे, लालच या मान सम्मान की दृष्टि से कभी किसी को अपनी कृपा का पात्र नहीं बनाया उनकी दृष्टि के सामने जो संस्कारी बालक जहाँ भी आ गया तो उन्होंने बिना किसी दिखावे व लालच या स्वार्थ के उसे तत्काल ही दिव्य शक्तिपात देकर आत्म साक्षात्कार कराया और परम दुर्लभ ब्रह्म से एकाकार करके परम शक्ति से विभूषित कर दिया। जिससे संसार में उनकी जय जय कार होने लगी। इस श्रृंखला में अनेकों नाम लिये जा सकते हैं।

ब्राह्मण बालक हरिराम जिसकी सत्यवादिता और समर्पण पर प्रसन्न होकर परम करुणामय श्री रामलाल महाप्रभु जी ने हृदय से लगाकर हार्दिक दीक्षा प्रदान करके तीव्र शक्तिपात किया और वह वरदान दिया कि बेटा आज से तुम अजर अमर महासिद्ध योगिराज बन जाओ। श्री रामलाल जी ने इतनी भारी कृपा एक ही दृष्टि में तत्काल प्रदान कर दी। समय आने पर श्री महाप्रभु जी ने उनको नेपाल में शीशागिर पहाड़ पर समाधिस्थ कर दिया जहाँ वह तीन मास में एक बार समाधि से उठते हैं उनकी आयु सदैव 25 वर्ष की दिखाई देती है। उनकी पहाड़ी पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई नहीं जा सकता विशैली हवायें वहाँ सदा चलती रहती हैं।

महापात की बिजना, व्यभिचारिणी रामरती इन सबको एक ही दृष्टि में शक्तिपात देकर परब्रह्म में तदाकार कर दिया इन जीवों को महापातक से निकाल कर ईश्वरीय शक्ति से विभूषित कर दिया, संसार में इनकी पूजा होने लगी। महाप्रभु श्री रामलाल जी ने महापात की जीवों शक्तिपात देकर एक ही क्षण में दुष्ट से दैवी सम्पदा वाला बना दिया।

नारायण दास एवं देवरहा बाबा पर आकाश मार्ग से भ्रमण करते हुए दृष्टि पड़ी तो तत्काल भूमि पर उतर आये और देवरहा बाबा व नारायण दास की खेचरी क्रिया तत्काल सिद्ध करा दी और दिव्य शक्तिपात देकर समाधि अवस्था में लीन कर दिया। श्री देवरहा बाबा जी जीवन भर महाप्रभु श्री रामलाल जी को अपने को चमकाने वाले सद्गुरुदेव बताते रहे और कहते थे कि ऐसे परम करुणामय सिद्धेश्वर का संसार में आना ही परम आश्चर्यमय कार्य है ये लोग तो कभी हिमालय को छोड़ते ही नहीं।

इन सब प्रभु चरित्रों का विवरण अति संक्षेप में ही सही परंतु पढ़ने के बाद एक बात और सामने आती है कि परम करुणामय महाप्रभु श्री रामलाल जी जिस भी संस्कारी बालक पर दिव्य कृपा बरसाते थे तो केवल उसकी पात्रता को ही देखते थे यह नहीं किस जाति का है,

स्त्री है या पुरुष, ज्ञानी है या अज्ञानी बच्चा है या बड़ा धनी है या निर्धन और दूसरी बात यह कि कृपा दान देने के बाद उसके सामने से अपने को हटा लिया करते थे सुपात्र जीवों को कृपा दी निहाल किया और आगे निकल गये बाद में लोग ढूंढते ही रह गये, कुछ को बाद में मिले और कुछ को आज तक फिर नहीं मिले, पर कार्य आज तक सबके वही कर रहे है। करने वाला कौन है यह लोग यह जान ही नहीं पाते और श्री महाप्रभु रामलाल जी से लाभ लेते रहते है और देवी देवताओं पीर पैगम्बरों का भ्रम पाले रहते है उन्हीं का नाम लेते रहते हैं कि अमुक देवी ने कर दिया या अमुक देवता, परि पैगम्बर ने कर दिया अरे याद करो ये देवी–देवता पीर पैगम्बर तो जब भी थे जब तुम्हारे भाग्य फूटे हुए थे तुम्हें कोई सुख नहीं था तुम्हें कोई एक कौड़ी को नहीं पूछता था परन्तु जिस दिन से करूणामय महाप्रभु श्री रामलाल जी की दिव्य कृपा दृष्टि तुम पर पड़ी तुम्हारा जीवन चक्र ही बदल गया तुम निहाल एवं मालामाल हो गये। प्रत्येक छोटे से छोटा एवं बड़े से बड़ा शुभ कार्य श्री रामलाल महाप्रभुजी की कृपा से ही होता है। हर वह कार्य जो पहले असंभव दिखाई देता था करूणामय श्री रामलाल महाप्रभु जी का नाम लेते ही संभव होने लगता है। जीवन में एक तरंग परम उल्लास व एक उद्देश्य प्राप्त हो गया है कि आत्म उत्थान करके साक्षात्कार की ओर चलें और महाप्रभुजी के रौशनी में नित्य आगे बढ़ते जायें। एक परम आश्चर्य देखने में यह आता है कि जो भक्त श्री महाप्रभु जी के श्रीचरणों में समर्पित रहता है और आत्मशोधन कर वृत्तियों पर कन्ट्रोल रखता है और उनकी आज्ञा पालन करता है तो उसके अन्दर भी वह चमक भर देते हैं और होता यह है कि उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों को उसी से अनेकों प्राकर के लाभ प्राप्त होने लगते हैं जो श्री महाप्रभुजी की शक्ति के ही परिचायक हैं कहा भी है–

यस्मिन देशे वसेद्योगी ध्यानयोग विचक्षण:।
सोऽपि देशो भवेत पूत: किं पुनस्तस्य बांधवा:।।

पर यह कैसी विडम्बना है कि जो सुख हमें श्री महाप्रभु जी ने जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए दिया था कि ताकि हम निविध्न रूप से आत्म चिन्तन कर सकें पर हम तो उस सुख को स्थायी मानकर उसके आदी होकर उसमें उलझते ही जा रहे हैं और यह बिल्कुल भूलते ही जा रहे हैं कि हमें कैसे अभय श्री चरण कमल मिले हैं जो प्राय: सामान्य जनों को तो सुलभ ही नहीं हो सकते। हमें बदलना होगा श्री महाप्रभुजी के अनुसार चलना होगा साक्षात्कार की ओर बढ़ना होगा तभी आत्मकल्याण संभव हो सकेगा अन्यथा नहीं।

शुभ संस्कारवश अब अवसर मिला है तो ऐसे सद्गुरु देव की जितनी भी हो सके अधिक से अधिक अपने को पूर्णरूप से समर्पित कर आज्ञापालन करके अपने को कुछ बना लिया जाये। अपने क्रियमाण कर्मों में तेजसता लाकर अपना अगला प्रारब्ध चमका लो ताकि अगला जन्म लेते ही करूणामय श्री महाप्रभुजी की सिद्धयोग साधना कक्षा में अग्रणी स्थान मिल जाये और आत्म उत्थान करते–करते कैवल्य लाभ के अधिकारी बन जायें।

योगमयी गंगापुर

राजेश कुमार सिंह, बलिया

उस दिव्य दृश्य को मैंने अपनी इन खुली आँखों से देखा है और शब्दों को इन कानों से सुना है; जो मेरे पास है। इस वाक्य को लिखने का मेरा तात्पर्य ये है कि इसमें कोई बनावटीपन नहीं, कहीं अतिश्योक्ति नहीं अर्थात् शक की गुंजाइश नहीं। मेरे कुछ गुरु भाई बहन मुझसे बोले कि पहली जनवरी 2009 को गंगापुर में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की दिव्य झांकी (शोभायात्रा) निकाली गई थी जिसमें लगभग पांच हजार भक्त देश के कोने–कोने से सम्मलित हुए थे। चूंकि 2009 में सद्गुरुदेव श्री चन्दमोहन जी महाराज का जन्म शताब्दी मनाया गया, इसलिए सभी गुरु भाई–बहन अपने–अपने स्तर से जो जहाँ थे वहीं पर सद्गुरुदेव जी के दिव्य लीलाओं का प्रचार–प्रसार में पहली जनवरी से ही लग गये थे। उक्त गुरु भाई–बहन पिछले वर्ष का वर्णन जिस तरह से किये; सुनकर मेरा मन वहां जाने के लिए व्याकुल हो उठा; साथ–साथ वे लोग बताये कि 31 दिसम्बर 2009 को भी शोभा यात्रा निकाली जायेगी, क्योंकि वह दिन शताब्दी के वर्ष का अंतिम दिन होगा, अर्थात् पहली जनवरी 2009 से शुभारम्भ और 31 दिसम्बर 2009 को समापन। फिर क्या 26 दिसम्बर 2009 को मैं गंगापुर, सवांई माधोपुर राजस्थान में पहुंच गया। रेलवे स्टेशन गंगापुर से उक्त शिविर जहां पर ये कार्यक्रम हो रहा था कि दूरी लगभग 500 मी है, वहां के निवासी अपने दिनचर्या में ऐसे लगे थे कि समझ में नहीं आ रहा था कि कार्यक्रम एक जगह हो रहा है या घर–घर में। रेलवे स्टेशन से कार्यक्रम स्थल तक की यात्रा मैं 10 या 15 मिनट में तय किया या पलभर में समझ में नहीं आया।

प्रत्येक वर्ष गंगापुर सिटी में 27 दिसम्बर से 2 जनवरी तक योग शिविर लगता है। वहाँ का प्रत्येक दिन निश्चित कार्यक्रमों में बंधा हुआ रहता है। सुबह पांच बजे मंगला आरती, तदोपरान्त एक घण्टे का ध्यान, फिर योगासन, जीवन तत्व साधन के साथ, फिर सुबह का नाश्ता कुछ देर विश्राम के बाद सामूहिक आरती, फिर भगवद् गीता के दो चार अध्याय का पाठ, फिर योग पर आचार्य ब्रह्मचारी डा. दासलाल जी का प्रवचन, फिर लगभग एक बजे दो प्रहर बाद भोजन पुनः दो घण्टे का विश्राम फिर कीर्तन–भजन, शाम को सात बजे सामूहिक आरती, पुनः योग पर प्रवचन फिर भोजन लगभग ग्यारह बजे विश्राम। इस बीच जिज्ञासू साधक श्री आचार्य जी से संदेहात्मक प्रश्न भी करते थे जिसका उत्तर आचार्य श्री गुरुकृपा से भली भांति देकर पुनः लोगों को संतुष्ट कर देते थे।

श्री विनोद अग्रवाल जी, बम्बई वाले अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिनकी पहचान एक

भजन गायक के रूप में है; हमारे दो गुरुभाई भूपेश खण्डेलवाल (मोनू) और पंकज शर्मा से सम्पर्क कर उक्त कार्यक्रम में भाग लिए तथा श्री महाप्रभु जी तथा सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में बैठकर अपना भजन हम गुरु भाई बहनों को सुनाये। श्री सीताराम जी जो राग–रागनियों के पर्याय हैं, शास्त्रीय संगीत के माध्यम से प्रभु चरणों में अपना सिर झुकाना नहीं भूलते। इस साल उनका साथ वनस्थली विद्यापीठ के लेक्चरर श्री रामस्वरूप जी जो राष्ट्रपति महोदय के समक्ष भी तबला–वादन कर चुके हैं; आये थे। चित्तौड़ के अम्बा जी सेक्साफोन प्लेयर शास्त्रीय संगीत में चार चांद लगा दिये, उनका कोई मिसाल नहीं। अनुराधा नाम की आठ वर्षीय बाला शास्त्रीय और सुगम संगीत सुनाकर सबका मन मोहली, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कथ्थक नृतक 'श्री मुरारी लाल सैनी', जिनका अधिकांशतः कार्यक्रम विदेशों में ही होता है श्री प्रभुजी के कार्यक्रम में आकर अपने कला का प्रदर्शन किये। उपरोक्त सभी कलाकार श्री सद्गुरुदेव जी के चरणों में निःशुल्क अपने कला का प्रदर्शन किये तथा गद्गद् भाव से पुनः सेवा का अवसर देने का आश्वासन देकर अपने–अपने स्थान को लौट गये।

बनारस घराने से भोजपुरी भजन गायक सम्राट श्री प्रदीप सिंह जी तथा साथी गुरुभाई श्री प्रकाश जी, विरेन्द्र पाण्डेय जी, उपेन्द्र सिंह जी, दीना नाथ मिश्रा जी, मदन सिंह जी, अनिल, ब्रजेश, संदीप (वकील) रोहित अभिषेक, आशुतोष ये कुछ ऐसे नाम हैं जो श्री प्रभु चरणों में बैठकर भजन बनाते और सुनाते हैं; साथ में कुछ गुरु बहनें भी जो वाराणसी से सम्बन्धित हैं, इस कार्यक्रम में बढ़ चढ़कर भाग ली। वाराणसी का ही ढोलक (नॉल) वादक श्री सुभाष लगभग बारह घण्टे तक एक आसन पर बैठकर लय, सुर, ताल के साथ भजन गायकों का साथ दिया जो अपने में एक मिसाल है। श्री केशव देव उपाध्याय जी सपत्नी वहां के कार्यक्रम में भाग लिये थे। उपाध्याय परिवार जहाँ भी रहते हैं, बस प्रभु कृपा लीलाओं की चर्चा सुनते और सुनाते रहते हैं। श्री प्रदीप सिंह और साथियों का एक भजन जिसको सुनने के लिए बार–बार गुरु भाई–बहन तथा भक्तों ने आग्रह किया वो भजन है:–

द्वार बहुत देखा, दरबार बहुत देखा;
पर गुफा सवांई सा, दरबार नहीं देखा।

पहली बार जो अध्यात्म प्रेमी इस भजन को सुनें उनके मन में अति शीघ्र सवांई धाम का दिव्य गुफा देखने को उत्कण्ठा जाग उठी। सवांई मण्डल आगरा के विनोद नादान ने अपने भजनों के माध्यम से भक्तों को गाने और नाचने के लिए बाध्य कर दिये। गंगापुर सिटी से जय सिंह जी, चन्द्रशेखर जी, रामेश्वर खण्डेलवाल जी के भजनों से भक्त भाव विह्वल हो जाते थे। भगवान नरसिंह मंदिर के पुजारी श्री लीलाधर शर्मा जी की विनम्रता और भाव समाधि देखकर मैं खुद से प्रश्न किया कि वैसा क्यों नहीं हूँ? हरियाणा से शमसेर जी, विरेन्द्र जी, राजेश, सुनिता जी, मोनू, दीपक, गोविन्द जी, हरिमोहन पैगोरिया जी ओमप्रकाश भारतीय

जी, प्रेमचन्द गुप्त जी, सहारनपुर से देवी प्रसाद शर्मा जी, हिमाचल प्रदेश मण्डी से रामलुभाया शर्मा जी, हरि सिंह जी, ज्ञान सिंह जी; लाल सिंह जी कुछ ऐसे नाम हैं, जिनकी स्थिति देखते बनती थी; उनके प्रत्येक कर्म में एक सामंजस्य तारतम्य था, जो योग की परिभाषा समझने के लिए कम नहीं है।

वर्ष 2009 का 31 दिसम्बर को अर्थात् जन्म शताब्दी के अंतिम दिन सुबह आरती, गीता पाठ के बाद लगभग 5000 भक्तों ने 9 बजे आचार्य श्री दासलाल जी तथा ब्रह्मचारी मोहन स्वरूप योगी जी के निर्देशन में भगवान नरसिंह मंदिर कालोनी स्थित सिद्धयोग आश्रम से नगर शोभा यात्रा निकाली। परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दिव्य स्वरूप को, गुरु बहन गुड़िया जी द्वारा श्रृंगार कर लेने के बाद, रथ पर विराजमान करके तथा जयकारा लगाते हुए शोभा यात्रा आगे बढ़ी। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय, योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जय, सिद्ध सवाई धाम की जय, हर-हर महादेव, उठो सोने वालों जगाने वाले आ गये, योग की डंका बजाने वाले आ गये जैसे दिव्य जय-जयकारों से आकाश गूँज उठा। इस यात्रा में बहनों का योगदान भी कम नहीं था। रचना शर्मा, राधा शर्मा, जुली शर्मा ये वो गुरु बहनें हैं जो शोभायात्रा में महिलाओं और गुरु बहनों को साथ लेकर योग गीत गाते हुए शोभा यात्रा में चार चाद लगा रही थी। रानी शर्मा 8वीं कक्षा की छात्रा उसकी भाव-भंगिमा देखकर मेरा मन उसके चरण छूने को बैचेन हो गया। जगह-जगह शोभा यात्रियों को केशर-बादाम युक्त दुग्ध पिलाकर तथा फल-मिठाईयां खिलाकर नगर वासी पुण्य के भागी बन रहे थे। सभी वर्ण के लोग अपनी-अपनी घर के छतों से पुष्प वर्षा कर रहे थे। दतिया के प्रिया शरण दुबे, अलीगढ़ के प्रवीण जी तथा गंगापुर के हरी गोपाल शर्मा जी इस शोभा यात्रा में बढ़ चढ़ कर भाग लिए। एक मुस्लिम भाई जो इस दिव्य शोभा यात्रा में भाग लिए उससे मैं बोला, 'दोस्त!

तुम मुस्लिम हो, आओ हिन्दू बन जाओ,
हम हिन्दू हैं, चलो मुस्लिम बन जायें।
ये अदावतें तो सदियों से आ रही हैं,
कम से कम हम दोनों मिलकर इंसान बन जायें।

लगभग 4 किमी. की दिव्य शोभा यात्रा 5 घण्टे में पूराकर भक्त जन सिद्धयोग आश्रम में आ गये।

योग शिविर में श्रद्धेय आचार्य डा. दासलाल जी ने अपना व्याख्यान महाप्रभु सिद्धगुरु श्री रामलाल जी महाराज तथा योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के वचनों, गुरुगीता, भगवत् गीता तथा पातंजलि योग सूत्र को आधार बनाकर दिये। आचार्य श्री योग विद्या को वैज्ञानिक और गणितीय बताते हुए योग की महिमा का स्पष्ट चित्रण किये। जन्म-मरण को जीवन का यथार्थ बताते हुए आचार्य श्री बोले कि संसारी प्राणी कर्म फलों के

परिणाम स्वरूप जन्म लेते हैं, भोग काल तक जीवित रहते हैं, कर्म श्रृंखला की समाप्ति के बाद मृत्यु को प्राप्त करते हैं। पुण्य और पाप के फलस्वरूप विभिन्न योनियों में चक्कर लगाते हैं। कोई महान पुण्यात्मा ही किसी सिद्धयोगी गुरु की चरण–शरण प्राप्त कर मनोनिग्रह चित्तनिरोध, तत्वज्ञान का अभ्यास कर सकने में समर्थ होता है। योग योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द जी योगयुक्त होकर जीवन का भरपूर आनंद लेने का उपदेश दिये हैं। योग युक्त होकर प्राण त्याग करने पर प्राणी जीवन–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। गीता में जीवो की दो प्रकार की गतियां बताई गई हैं–

शुक्ल कृष्णे गतीह्योते जगतः शाश्वते मते,
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।। 8/26

इस शरीर में प्राण मेहमान की तरह है। ये कब साथ छोड़ देगा निश्चित नहीं, इसलिए निरन्तर साधना की आवश्यकता है। योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द जी गीता में कहते हैं:–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्,
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।। 8/5

अर्थात् अंतकाल में जो परमात्मा में मन लगाकर प्राण त्याग करता है वह दिव्य चिन्मय भाव में ईश्वर के धाम में अवस्थित हो जाता है।

कार्यक्रम के मध्य में एक घटना मेरे आंखों के सामने ही घटी। हुआ यू कि इस योग शिविर के व्यवस्थापक श्री पूरण खण्डेलवाल जी के घर में मण्डी के गुरु भाई बहनों के साथ ठहरा हुआ था। एक रोज शाम लगभग 3 बजे हम श्री रामलुभाया शर्मा जी और श्रद्धेय हरि सिंह जी के साथ बैठकर प्रभु चर्चा कर रहे थे। श्री हरि सिंह जी सद्गुरुदेव जी के श्री चरण–कमल में बहुत दिन रहे हैं, वो जब श्री प्रभु जी के लीलाओं का वर्णन करते हैं तो लगता है खुद के नजरों के सामने वो घटित हो रही है। उसी दरम्यान श्री रामलुभाया शर्मा जी बेहोश होकर कुर्सी से लुढ़कने लगे तथा उनकी श्वसन क्रिया उल्टी होने लगी; बिना समय गवाये श्री हरि सिंह जी श्री महाप्रभु जी का 'चरण रज प्रसाद' श्री रामलुभाया शर्मा जी के मुख में डाले और हम जो चार–पांच गुरु भाई–बहन वहां थे। 'गुरुदेव जय–जय, सद्गुरु जय–जय, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय–जय' का कीर्तन करने लगे; बस क्या? श्री रामलुभाया शर्मा जी पूर्व स्थिति में आ गये अर्थात् पूर्णतः निरोग हो गये। मुझे लगा कि श्री पूरण खण्डेलवाल जी तथा श्री रामेश्वर खण्डेलवाल जी जो तन–मन–धन से उस कार्यक्रम के व्यवस्था में लगे थे उनके घर पर श्री प्रभु जी किसी दूर से आये हुए गुरुभाई को सदा के लिए सम्बन्ध छुड़ाकर उस परिवार को दण्ड देना नहीं चाहते थे, जो आजीवन प्रायश्चित का कारण बन जाता।

योग शिविर का समापन गुरुभाई श्री चन्द्रशेखर गुप्ता जी 'जो पेशे से वकील है' तथा गुप्ता बन्धुओं के आवास पर **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम सर्वथा शक्तः'** ऐसे योगी योगेश्वर

जन्म और मृत्यु क्यों ?

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

प्राय: हम लोग जन्म तथा मृत्यु को साधारण घटना समझते हैं, परंतु ऐसा नहीं है। इस संसार में जो पैदा हुआ है उसका मरण निश्चित है। इसीलिए कहा जाता है, "आया है सो जायगा राजा रक फकीर।" अत: जिसने जन्म ले लिया है उसकी मृत्यु अटल सत्य है, उसे कोई रोक नहीं सकता। जन्म, नदी के उद्गम के समान है, नदी का बहाव जीवन यात्रा है तथा नदी का समुद्र में मिलना ही मृत्यु है। मृत्यु होने पर जीवन समाप्त हो जाता है तथा शरीर का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार से वर्षा का जल नदी नाले बनकर समुद्र की तरफ दौड़ते है, वैसे ही जीवात्मा एकाग्र होने के लिए समुद्र रूपी परमात्मा की तरफ दौड़ती है। प्राणी मात्र का जन्म उसके संचित संस्कारों के कारण ही होता है जिनके संस्कार शेष नहीं होते उनका पुर्नजन्म नहीं होता है। जिन आत्माओं का पुनर्जन्म नहीं हुआ करता उन्हें मुक्तात्मा कहा जाता है। मुक्तात्माओं के तीनों प्रकार के कर्म, पापकर्म, पुण्य कर्म तथा पाप–पुण्य कर्मो का सर्वथा नाश हो जाता है। इसीलिए उन्हें प्राय: जीवनमुक्त योगी कहा जाता है। जीवनमुक्त योगी जब तक प्रलय होती है, उस काल तक जीवन मुक्त रहा करते हैं तथा पुन: सृष्टि सृजन होने पर मुक्तात्माओं को भी जन्म धारण करना पड़ता है। मृत्यु के साथ आत्मा मन, बुद्धि और संचित संस्कार के साथ शरीर से अलग हो जाती है तथा उचित समय आने पर संस्कारवश पुनर्जन्म धारण करती हैं। संस्कार वश ही प्राणीमात्र को माता–पिता, भाई–बहन तथा सम्बन्धी मिला करते हैं। जिस–जिस के साथ पूर्व जन्म के संस्कार जुड़े हैं, उसी प्रकार प्राणी प्राय: अपने जीवन काल में निर्वहन करता है। जिस प्रकार से सी.डी. में गाने बजाने, भाषण इत्यादि की आवाज, लय, ताल अंकित हो जाती है उसी प्रकार से आत्मा में भी संचित संस्कार इत्यादि अंकित हो जाते हैं। सही समय आने पर संस्कारों का भोग होने लगता है ठीक उसी प्रकार जैसे सी.डी. प्लेयर में सी.डी. लगाने के बाद हम अंकित गानों, तानों, वाद्ययंत्रों की लय–ताल सुन सकते हैं। प्राय: जैसे ही बच्चा पृथ्वी पर गर्भ से बाहर आता है, उसके संस्कारों का भोग प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे के जन्म के समय से ही बच्चे की जन्म पत्रियाँ बनती हैं। जन्म पत्रियों का आधार उसके पूर्वजन्म संस्कार वश ही सब गृह अपनी–अपनी जगह स्थित होती हैं। अत: जन्मपत्रि देखकर बच्चे के पूर्व जन्म संस्कारों का ज्ञान हो जाता है। प्राणी मृत्यु के समय जैसे–जैसे इच्छा करता है,उन्हीं के अनुसार वह जन्म धारण किया करता है। इसी लिये कहा जाता है– 'अन्त मति वैसी ही गति'। अखिल ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है :–

सुमिरत जे जे भाव जो, प्राणी त्यागें देह।
पावें ते ते भाव सोइ; अर्जुन नहिं संदेह।।

(गीता 8/6)

अर्थात् हे कुन्ती पुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस–उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 8/7)

इसलिए हे अर्जुन, तू सब समय में निरंतर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन–बुद्धि से युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा। ऐसा भगवान ने क्यों कहा, क्योंकि प्राणीमात्र अन्त समय में माया के वशीभूत होकर बिना पूर्व अभ्यास के मेरा चिन्तन नहीं कर सकता। यथा:–

कोटि कोटि मुनि यतन कराहीं।
अन्त राम नाम आवत नाहीं।।

इसलिए प्राणीमात्र को निरंतर प्रभू स्मरण करके अपने अभ्यास को दृढ़ बनाना चाहिए। यथा–

राम नाम की लूटि है, लूटि सके तो लूटि।
अन्तकाल पछितायेगा, जब प्राण जायेंगे छूटि।।

क्योंकि बिना पूर्व अभ्यास के प्राणी उस समय राम का नाम भी नहीं ले पाता। सिखों की पवित्र पुस्तक 'गुरुग्रथ साहिब' में भी कहा गया है, **'नानक नाम जहाज है, चढ़े सो उतरे पार'**।। अर्थात् गुरु नानक जी कहते हैं कि प्रभु का नाम स्मरण उस जहाज के समान है, जो उसमें सवार हो गया, तो निश्चिय ही भव सागर के पार हो जायेगा।

जीवन एक यात्रा के सदृश है जिसकी समाप्ति ही मृत्यु कहलाती है। जीवन उस परम पिता परमात्मा की धरोहर है, उस धरोहर को वापिस करना ही मरण है। यथा:–

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वासुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते।।

अर्थात् मृत्यु एक ऐसी सरिता है, जिसमें श्रम से थक कर जीव नहा कर कायारूपी वस्त्र बदलता है तथा नया शरीर धारण कर वापिस आ जाता है– यथा:

मृत्यु एक सरिता है, जिसमें श्रम से कातर जीव नहाकर।

फिर नूतन धारण करता है, कायारूपी वस्त्र बहाकर।।

भगवान कृष्ण चन्द्र महाराज ने गीता में कहा है:–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संपाति नवानि देही।।

(गीता 2/22)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर दूसरे नये कपड़े धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर धारण करती है।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व यह अधम शरीरा।।

हमारा शरीर पृथ्वी, पानी, अग्नि, आकाश तथा वायु से मिलकर बना हुआ है। मृत्यु होने पर शरीर के पांचों तत्व विलीन हो जाते हैं। अर्थात् पृथ्वी तत्व पृथ्वी में, जल, जल में, अग्नि–अग्नि में, आकाश–आकाश में तथा वायु तत्व वायु में मिल जाते हैं। आत्मा तो अजर, अमर, अविनाशी है। क्योंकि –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहित पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

(गीता 2/23)

आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग उसे जला नहीं सकती, जल उसे गीला नहीं कर सकता, तथा हवा उसे सुखा नहीं सकती। वह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। जीवात्मा नित्य, सनातन है। शरीर के नाश होने पर जीवात्मा का नाश कदापि नहीं होता।

घटाव भासको भानुघटिनाशे च नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देह नाशे न नश्यति।।

अर्थात् जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य, घड़े के नष्ट होने से नष्ट नहीं होता, वैसे ही शरीर का प्रकाशक, आत्मा शरीर के नष्ट हो जाने से अर्थात् मृत्यु हो जाने से नष्ट नहीं होती।

सत्य है कि सगे सम्बन्धी केवल ममता, स्वार्थवश ही, शरीर के लिए रोते हैं, वे सोचते हैं हमारा क्या होगा, हमें कौन सहारा देगा, हमारी कौन देखभाल करेगा इत्यादि। कहा भी गया है, **'स्वार्थ लागि करहिं सब प्रीती।'** आत्मा सब उपार्जित धन दौलत, सामान, मकान इत्यादि यहीं छोड़कर भावी यात्रा के लिए शरीर त्याग कर प्रयाण कर जाती है। यथा–

मुट्ठी बांध कर आया बन्दे, हाथ पसारे जायेगा।
धन दौलत और माल खजाना, यहीं पड़ा रह जायेगा।।

वरदान, शाप, ममता भी प्राणीमात्र के पुनर्जन्म का कारण बन जाते हैं। श्री नारद मुनि

के शाप के कारण, विष्णु भगवान को रामजन्म धारण करना पड़ा, उसी प्रकार प्रहलाद की रक्षा के लिए नरसिंह अवतार लेना पड़ा, तथा माता कैकेय की इच्छा पूर्ति हेतु पुनः कृष्णावतार धारण करना पड़ा। उसी प्रकार प्राणीमात्र जो–जो इच्छायें दूसरों के प्रति करते हैं और अन्त समय में चिन्तन करते हुए स्वर्गामी हो जाते है तो निश्चित जानिये कि पुनर्जन्म का मार्ग प्रशस्त होगा। इसीलिए जीवात्मा को मरते समय प्रभु चिन्तन ही करना चाहिए। जीव अगर बिना कर्जा चुकाये मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसे कर्जा चुकाने के लिए पुनर्जन्म धारण करना ही पड़ेगा। अगर उसके सम्बन्धियों ने उस कर्जे का भुगतान यथा समय कर दिया है तो वह जन्म लेने से बच सकता है अगर अन्य शेष संस्कार न होते हों।

जन्म से छुटकारा तभी प्राप्त हो सकेगा, जब हमारे सभी प्रकार के संस्कारों का नाश हो जायेगा। अतः योग साधनों द्वारा सारी चित्तवृत्तियों का दग्ध हो जाने से संस्कार नष्ट हो जाते हैं। भुने हुए चने बोने से पौधे का अंकुरण नहीं फूट सकता, ठीक उसी भाँति संस्कार नष्ट होने से पुनर्जन्म नहीं होगा।

मृत्यु जीवन का अन्तिम पड़ाव है। मृत्यु शरीर परिवर्तन है। मृत्यु नदी का संगम है। जीवन उद्देश्य पूर्ण होने का अन्त है। किसी भी जीव की आयु निश्चित नहीं है। हाँ अगर निश्चित है तो केवल श्वासों की संख्या। जब श्वासों की संख्या पूर्ण हो जाती है तो शरीर का अन्त हो जाया करता है। श्वासं पूर्ण होने से शरीरस्थ दसों इन्द्रियाँ अपना–अपना कार्य करना बन्द कर देती हैं। बुद्धि भ्रमित होने लगती है। प्राणी के दिमाग में माइण्ड वाइरस आ जाता है जो मन को कमजोर तथा अकर्मणीय बना देता है जिसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यह माइण्ड वायरस ठीक उसी भाँति कार्य करता है जैसे आजकल कम्प्यूटर में वायरस आ जाने से कम्प्यूटर निष्क्रिय हो जाता है। जब शरीर जीर्ण हो जाता है तथा इन्द्रियाँ मन के निष्क्रिय होने से कार्य करना बन्द कर देती है अर्थात् जीवन रूपी इंजन कमजोर होने लगता है तब समझना चाहिए कि शरीर आराम के लिए चिर निन्द्रा में जाना चाहता है। शरीर की चिरनिद्रा ही मृत्यु है। जब कि साधारण निद्रा में शरीर चैतन्य रहा करता है। जीवन एक धर्मशाला के सदृश्य है जो यात्रा पूरी होने पर खाली करनी पड़ती है। अतः मृत्यु परिवर्तन है जो प्रकृति का नियम है। अतः ममता त्यागकर मोह रहित होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाय:–

तरूवर कहता पात से, सुनो पात एक बात।
या घर की यही रीति है, एक आवत एक जात।।
जेहि मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरण परमानन्द।।

प्राणी जीवन तो जीता है, पर जीवन सुधारने का उपाय नहीं करता इसी लिए हमारी दुर्गति होती रहती है। जीवन सुधारने का उपाय तो उस परमेश्वर से सम्बन्ध बनाने का है।

आत्मा का परमात्मा से दृढ़ सम्बन्ध ही अन्त काल में मृत्यु के समय उस प्रभु का नाम स्वतः ही स्मरण हो जाता है तथा प्रभु कृपा से मृत्यु भय नहीं सताता। कहते हैं, मरते समय जीव को एक हजार बिच्छुओं के काटने जैसी पीड़ा होती है। अगर प्रभु नाम स्मरण हो जाता है तो मृत्यु पीड़ा सहज हो जाती है।

अतः दुःख का साथी ईश्वर ही है तथा सुख में जीव उसे भुला देता है और ईश्वर को याद तक नहीं करता है। यथा–

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, तो दुःख काहे को होय।।

प्राणी मात्र का ईश्वर के प्रति प्रेम, अनुराग ही सच्ची भक्ति है। भक्ति से प्राणी सुख प्राप्त करता है। दुनियाँ में दिखावा करना ही परमात्मा के साथ छलावा है। भक्त साधक को अनुशासित और नियमित होना चाहिए। भक्ति करना सबका कार्य नहीं है। यथा–

कामी क्रोधी लालची उनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा जाति वरन कुल खोय।।

अर्थात् कामुक पुरुष, अतिक्रोध करने वाला, लालच में जीने वाला जीव, भगवान की भक्ति नहीं कर सकता क्योंकि भक्ति परमात्मा के लिए प्रेम और अनुराग चाहती है। कबीर ने कहा है–

जब तक नाता जगत का, तब तक भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भक्त कहावे सोय।।

अर्थात् मनुष्य जब तक सांसारिक नाते रिश्तों से बंधा है, तब तक उसे ईश्वर की भक्ति करना संभव नहीं है। अतः परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब नाते, रिश्ते त्यागने पड़ते हैं। वैराग्यता से भक्ति बढ़ती है तथा मोह समाप्त होता है। अतः वैराग्य एक शस्त्र की भाँति काम करता है। महाकवि तुलसीदास ने कहा भी है–

बिन सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग।।

अर्थात् जब तक सच्चा सत्संग नहीं मिलता तब तक मोह माया दूर नहीं की जा सकती तथा मोह माया जब तक दूर नहीं होती, तब तक परमात्मा से अनुराग प्रेम नहीं किया जा सकता। अतः भगवान में दृढ़ अनुराग उत्पन्न करने के लिए हमें सभी कामनाओं का त्याग करना ही पड़ेगा। वास्तव में सभी प्राणीयों को सांसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों और दुनिया की चकाचौंध करने वाले वैभवों को थिर स्थाई बनाने की प्रक्रिया को विराम देना ही होगा क्योंकि समय कम है तथा हमारी समस्यायें असीमित हैं। अतः आत्मकल्याणार्थ हमें भागीरथ प्रयास सुख शांति के लिए करना ही होगा। धन, सम्पत्ति कुटुम्ब, कबीला, रूप सौंदर्य इत्यादि तो

नाशवान है। काया आत्मा के साथ नहीं जाती, यह तो नाशवान है, अत: शरीर को तो आत्मा से अलग होना ही है। आत्मा का शरीर से अलग होना ही मरण है। मरण नींद नहीं, यह तो चिरनिद्रा है। नींद से तो प्राणी उठ जाता है, परंतु मृत्यु पाश में जाने के पश्चात् जीव वापिस नहीं होता।

नींद में जीव की आंखें बन्द रहती है, परंतु शरीर के सारे अंग अपना-अपना कार्य करते रहते हैं, परंतु मृत्यु में सारा शरीर ही जड़ बन जाता है शरीर का कोई अंग कार्य नहीं करता। अत: शरीर की निष्क्रियता ही शरीर की मृत्यु है। मृत्यु महाप्रयाण की तैयारी है। संत पथिक जी महाराज ने कहा है:-

जहाँ रह रहे हो, निकलना पड़ेगा।
नहीं चाहने पर भी चलना पड़ेगा।।
ऐसे खोके फिर हाथ मलना पड़ेगा।
वहाँ मन फँसाना महा मूढ़ता है।
बड़े भाग्य से ऐसा नर तन मिला है।
निरर्थक बिताना महा मूर्खता है।।

जीव के अन्दर जब तक थोड़ा सा भी अहंकार है, ईश्वर की पूर्ण कृपा का भागी वह नहीं बन सकेगा। जैसे गुब्बारे में जल भरा हो और पाप से हवा भरने की कोशिश करें तो गुब्बारे में हवा अन्दर तब तक नहीं जायेगी तब तक गुब्बारे से पानी बाहर न निकाल दें, तभी गुब्बारा पूर्ण रूपेण फूल सकेगा। इसी तरह जब तक शरीर में अभिमान भरा है, वहाँ परमात्मा कैसे रह सकता है? मेरा मानना है कि जन्म तथा मृत्यु अकारण नहीं होते, इनके अनेकों कारण जन्म-जन्मातरों के हुआ करते हैं। अत: जन्म सत्य नहीं है अपितु जन्मने वाले की मृत्यु अटल सत्य है।

■■■

शोक संवेदना

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि वी.के. कुकरेजा झाँसी वालों की धर्मपत्नी सुशीला कुकरेजा की एक दुर्घटना में मौत हो गई है। इस दु:खद समाचार से सिद्धयोग परिवार अत्यन्त व्यथित हैं। श्री प्रभु जी दु:खी पारिवारिजनों को असह्य दु:ख को सहन करने की शक्ति दें तथा सुशीला देवी को अपने अभय चरण कमलों में शरण दें।

– सम्पादक सिद्धयोग

श्री नारायण द्वारा नारायण की योग दीक्षा

केशव देव उपाध्याय

जैसे शूरों को सहस्त्रधारी अस्त्र का आधार है।
हे ईशपाणि हरो हमारा सब तुम्हीं पर भार है।।

यह कृपा प्रसंग सम्भवत: सत्तर के दशक के कुछ पूर्व का है। अलीगढ़ जनपद में ऐहन एक गाँव है। जहाँ के निवासी ज्यादेतर कृषि (खेतीबारी) करते हैं। इस गाँव में करीब-करीब सभी जातियों के प्राणी निवास करते हैं। उसी गाँव का एक चालिस-पैंतालिस वर्ष का काछी (कोइरी, वर्मा अथवा पटेल) जाति के एक किसान का नाम नारायण है। निहायत गरीब एवं येन-केन प्रकारेण में परिवार अपना भरण-पोषण कर रहा था। थोड़ी बहुत खेती लायक जमीन थी, उसमें साग-सब्जी उगाकर बेचना एवं उससे होने वाली आमदनी से अपनी घर-गृहस्थी का पूरा कार्य करना ही इस परिवार का मुख्य आमदनी का श्रोत था। थोड़ी बहुत और जमीन थी जिसमें परिवार के भरण-पोषण के लिए खाने लायक गेहूँ एवं चावल पैदा हो जाता था। आर्थिक स्थिति जब कुछ डबाडोल हुई तो इस परिवार ने कुछ भेड़ें खरीद लीं एवं उनके बालों को ऊन वाले कम्बल बनाने वालों के हाथ बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति को सामान्य रखने का साधन बनाया। इस प्रकार इस परिवार का सांसारिक कार्य सम्पादित होना आरम्भ हो गया। श्री सिद्धयोग दरबार के अपने सुयोग्य आदरणीय साधकों, विद्वानों, ध्यानी श्री गुरुभाई-बहनों एवं नवागन्तुक इस पथ से जुड़ने वाले प्रिय भाई-बहनों को यह बतलाना समीचीन होगा कि हमारे भाई श्री नारायण जी बिलकुल ही पढ़े लिखे नहीं थे, बड़ी मुश्किल से मात्र अपना नाम 'नारायण' ही लिख पाते थे।

भाई श्री नारायण काछी जी के इस जन्म के संस्कार इस प्रकार के थे कि ये होश सम्भालते ही पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणामस्वरूप दुनियावी कोई कार्य करते समय उपाँशु विधि द्वारा 'राम-राम-राम' का जप किया करते थे। जप करने की वह विधि जिसमें मन्त्र का उच्चारण करते समय जिह्वा चलती है, ओठ हिलाते हैं परंतु मन्त्र किसी अन्य बिल्कुल नजदीक उपस्थित प्राणी को भी सुनाई नहीं देता है। श्री नारायण जी का यह कार्य सदा-सर्वदा प्रत्येक कार्य करते समय चलता रहा। फरवरी का महिना था, श्री नारायण जी बैंगन की क्यारी में निराई (घास निकालने) का कार्य कर रहे थे। अपराह्न का लगभग तीन बजे का समय था एवं वह 'राम-राम' मन्त्र का जप कर रहे थे। एक विलक्षण कृपा प्रसंग उपस्थित हो गया। श्री नारायण जी ने घास खेत से बाहर फेंकने के लिए इकट्ठा करने का कार्य ज्योंही आरम्भ

किया, मात्र दस–बारह फीट की दूरी पर, बैंगन के खेत में ही मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम को जगत–जननी माँ सीता जी के साथ पृथ्वी से करीब ढाई–तीन फीट ऊपर स्थूल शरीर से उपस्थित देखा। श्री नारायण जी उनका चरण स्पर्श करने की नियत से उनके सामने बढ़ने का कार्य आरम्भ किये तो भगवान श्री राम ने आदेश दिया कि अभी तुम हमारे चरण स्पर्श करने के अधिकारी नहीं हो। श्री नारायण ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि भगवन, हमारे द्वारा ऐसा कौन सा पाप कर्म या घृणित कर्म बन गया है कि मैं आपका चरण स्पर्श नहीं कर सकता। भगवान श्री राम ने अपने मुखारबिन्दु से कहा कि बेटा! ऐसी कोई बात नहीं है, तुम तो पुण्यात्मा प्राणी हो। श्री नारायण ने निवेदन किया कि भगवन्! तब हमें अपने चरण–कमल स्पर्श करने से क्यों रोक रहे हैं? भगवान श्री राम ने अपने मुखारबिन्द से कहा कि बात ऐसी है कि तुमने अभी गुरुदीक्षा नहीं ली है एवं निगुरु प्राणी हमारे चरण स्पर्श एवं दर्शन करने का अधिकारी नहीं है। यह जो तुम्हे हमारे स्थूल दर्शन का लाभ मिला इसका मात्र कारण यही है कि पिछले डेढ़ महीने से तुम हम लोगों के सम्बन्ध से अनवरत चिन्तन कर रहे थे एवं तुम्हारे उस गाढ़ चिन्तन ने हमें दर्शन देने के लिए बाध्य कर दिया। श्री नारायण ने प्रार्थना किया कि प्रभो! आपने कृपा करके हमें दर्शन दिया परंतु अब हमें यह बतलाने की कृपा करें कि ये गुरुदीक्षा क्या होती है?

हमारे भाई श्री नारायण जी द्वारा यह पूछने पर भगवान श्री राम ने बतलाया कि किसी महात्मा या महापुरुष से जब गुरु मन्त्र लिया जाता है तो उसे गुरुदीक्षा लेना कहते हैं। तुमने अब तक किसी से गुरुमन्त्र नहीं किया, इसलिए हमारे स्पर्श करने के अधिकारी नहीं हो। अब तुम जल्दी किसी सन्त–महात्मा से गुरुमन्त्र लेकर उसे अपना गुरु बना लो। सरल स्वभाव के श्री नारायण जी ने भगवान राम से प्रार्थना किया कि आप ही गुरुमन्त्र देकर हमारे गुरुदेव बनने की कृपा करें। भगवान श्री राम ने कहा कि इस रहस्य को तुम नहीं समझ सकते। मोटे तौर पर यह समझ लो कि तुम्हें गुरुमन्त्र देने के लिए मुझे मनुष्य का शरीर धारण करना पड़ेगा, जो इस समय मैं नहीं करने वाला। तदन्तर श्री नारायण जी ने प्रार्थना किया कि भगवन्! फिर तो आप ही बतलाने की कृपा करें कि मैं किससे गुरुमन्त्र लूँ एवं उसे अपना गुरुदेव बनाऊँ? जानते है भगवान श्री राम ने उस श्री नारायण को किससे गुरुमन्त्र लेने एवं उन्हें अपना गुरुदेव बनाने की आज्ञा प्रदान की? आपको यह जानकर महान आध्यात्मिक आनन्द एवं प्रसन्नता होगी कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम ने देवाधिदेव–महादेव, जगतपति जनार्दन परम योग योगेश्वर हमारे–आपके आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज का नाम बताते हुए कहा कि सिद्ध शिरोमणि, योगी सम्राट श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, जो योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम पर इस समय विराजमान हैं, उनसे गुरुमन्त्र लेकर उन्हें अपना गुरुदेव बना लो। इस आश्रम को श्री सवाँई धाम के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद भगवान श्री राम ने कहा कि अब हम लोग जा रहे हैं। उनके मुखारबिन्दु से ये वाक्य

सुनकर श्री नारायण ने दूर से ही साष्टांग प्रणाम किया एवं भगवान श्री राम अपनी शक्ति माँ सीता के साथ अन्तर्ध्यान हो गये। इसी ऐहन गाँव में परम आदरणीय हमारे वरिष्ठ गुरुभाई श्री भागवत स्वरूप शर्मा जी (अब नहीं रहे अर्थात् जिनकी जीवन ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अखण्ड ज्योति में समाहित हो गई) निवास करते थे। वह प्राय: अपने श्री सिद्धगुफा सवाँई आश्रम एवं यदा-कदा अन्य तीर्थ स्थलों में भी पुण्य अर्जन करने हेतु जाया करते थे। श्री नारायण अपने खेत से सीधे हमारे आदरणीय योगाभ्यासी साधक श्री भागवत स्वरूप शर्मा जी के घर चले गये। श्री शर्मा जी अपने घर पर ही तख्त पर बैठे मिले। समयोचित् अभिवादन के बाद परम आदरणीय भाई श्री शर्मा जी ने पूछा कि कैसे आना हुआ नारायण। श्री नारायण ने उनसे प्रार्थना किया कि पण्डित जी! मैं एक उलझन में फँस गया हूँ। श्री शर्मा जी ने कहा कि बतलाओ कि तुम्हारी क्या उलझन है, मैं अपनी तरफ से प्रयास करूंगा कि तुम्हारी उलझन कम हो जाय या समाप्त हो जाय। तदन्तर श्री नारायण ने अपने साथ घटी पूरी घटना का अपने टूटे-फूटे शब्दों में सविस्तार वर्णन किया। उसकी पूरे कृपा प्रसंग को सावधान मन से सुनने के बाद उसके कंधे पर अपना दाहिना हाथ रखकर मुस्कराते हुए, हमारे आदरणीय भाई श्री शर्मा जी ने कहा कि अरे पगले! श्री सवाँई धाम ही तो हमारा गुरुधाम है एवं मेरे सर्व समर्थ श्री गुरुदेव का नाम ही योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज है। उनके मुख से ऐसी बात सुनकर श्री नारायण बहुत प्रसन्न हुए, उनकी आँखे प्रेमाश्रुओं से दब-दबा गयीं। उसने कहा कि पण्डित जी अभी तुरन्त श्री सवाँई धाम चलने की कृपा की जाय। श्री नारायण की बात सुनने के बाद श्री शर्मा जी ने कहा कि आज तो दिन ढल चला है, कल प्रात: आठ बजे तुम तैयार होकर आ जाना, मैं भी उस समय तक तैयार हो जाऊंगा एवं फिर तुम हम दोनों एक ही साथ सवाँई धाम चलेंगे।

दूसरे दिन पूरी प्रकार से तैयार होकर श्री नारायण प्रात: आठ बजे आदरणीय गुरुभाई श्री भागवत स्वरूप शर्मा के घर पहुँच गये परंतु वे किसी जरूरी कार्य से इनके जाने के पूर्व ही चले गये थे एवं घर पर यह बतला गये थे कि यदि श्री नारायण हमें ढूंढते हुए आये, तो उनसे कहना कि मैं अब कल उनके साथ प्रात: आठ बजे सवाँई धाम के लिए प्रस्थान करूंगा। आज वे चले जाय एवं कल प्रात: आठ बजे आ जायें। दूसरे दिन नारायण फिर प्रात: आठ बजे आदरणीय गुरुभाई श्री शर्मा जी के घर श्री सवाँई धाम जाने के लिए पहुँच गये। तीसरे एवं चौथे दिन भी हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री भागवत स्वरूप शर्मा जी के साथ घर-गृहस्थी के कुछ ऐसे बहुत जरूरी काम आ गये कि वे श्री नारायण जी के साथ सवाँई धाम नहीं जा सके। चौथे दिन जब श्री नारायण जी, आदरणीय भाई जी के पास पहुँच तो उन्होंने बड़े प्यार से समझाया कि नारायण ! लगता है कि हमारा-तुम्हारा साथ श्री सवाँई धाम जाने का संस्कार नहीं है। अत: मैं एक कागज पर वहाँ का पता लिखकर दे देता हूँ एवं वहाँ पहुँचने का रास्ता समझा देता हूँ। उन्होंने एक कागज के आधे पन्ने पर लिख दिया, रेलवे स्टेशन

मितावली और उसके नीचे लिख दिया, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाँई (श्री सवाँई धाम)। इसके बाद उन्होंने मौखिक रूप से समझाया कि यहीं अलीगढ़ से रेलवे के किनारे वाली पगडण्डी पकड़कर पैदल ही रेलवे लाइन के किनारे ही चलते जाना। आठवें रेलवे स्टेशन का नाम मितावली है, वहाँ रूक जाना एवं वहाँ किसी से भी सवाँई धाम पूछ लेना, जो इस कागज पर लिखा है एवं फिर उसके बताने के अनुसार चलकर श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम पहुँच जाना एवं फिर श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करके गुरुमन्त्र ले लेना। वैसे आज तो जाओगे तो लेट हो जायेगा। आज घर जाकर आराम कर लो एवं फिर अपने पहनने का कपड़ा एक सेट और ले लेना। श्री नारायण जी ने वैसा ही किया जैसा कि हमारे आदरणीय बड़े गुरुभाई श्री भागवत स्वरूप शर्मा जी ने निर्देशित किया था। अगले दिन प्रातः काल (भगवान श्री राम के दर्शन के पाँचवे दिन) वे स्नान वगैरह से निवृत्त होकर धोती कुर्त्ता पहन कर और कंधे पर एक गमछा रखे एवं साथ ही एक झोले में एक सेट धोती–कुर्त्ता रखे और रेलवे लाइन के समानान्तर वाली पगडण्डी से चलना आरम्भ किये। दो रेलवे स्टेशन की यात्रा उन्होंने पैदल समाप्त की एवं वहाँ से तीसरे रेलवे स्टेशन के लिए आगे पैदल चलना आरम्भ किये।

दूसरे रेलवे स्टेशन से मात्र चार फर्लांग आगे बढ़े होंगे कि एक विलक्षण घटना (जिसे आराध्यदेव की कृपा ही कहना उचित होगा) घटित हुई। हुआ यह कि जब ये लगभग चार फर्लांग की दूरी चलकर आगे बढ़े, तो इन्हें ठीक सामने आकाश में इनके सिर की ऊँचाई के बराबर ऊँचाई पर लगभग पन्द्रह फीट आगे एक काला सर्प करीब तीन फीट लम्बा, लम्बाई में पड़ा दिखलाई दिया। वे उसे सावधान मन से देखने लगे। इनके देखते–देखते वह सर्प रेलवे लाइन के समानान्तर उसी ऊँचाई पर तीव्र गति से उड़ना आरम्भ किया। सर्प को उड़ता हुए देखने के साथ ही इनकी आँखें स्वतः बन्द हो गई एवं इनका पैर जमीन से उठ गया तथा वे भी उसी ऊँचाई पर समानान्तर उड़ना आरम्भ कर दिये। करीब एक घण्टे बाद श्री नारायण जी को वह सर्प दिखना बन्द हो गया एवं उनके पैर स्वतः जमीन पर आ गये, उसके पश्चात् इनकी आँखें स्वतः खुल गईं। इन्होंने यह देखा कि यह एक रेलवे स्टेशन के सामने खड़े हैं। श्री नारायण जी ने अपने कुर्त्ते की जेब से वह पर्ची निकाली जो आदरणीय बड़े भाई श्री शर्मा जी ने उन्हें दिया था एवं पास खड़े एक बालक को देकर यह पूछा कि अभी, यह रेलवे स्टेशन कितनी दूर है। उस बालक ने कहा कि ताऊ जी, यह वही स्टेशन है जो इस कागज में लिखा है। साथ ही उसने यह भी बतला दिया कि यहाँ से सीधे जाइये एक सड़क मिलेगी, उस पर बायें होकर सीधे चलियेगा, आप श्री सवाँई धाम पहुँच जायेंगे, जो इस कागज पर लिखा है। श्री नारायण जी उसकी बताई विधि से चले एवं सूर्यास्त होने के समय सिद्ध सेवित श्री सवाँई धाम पर पहुँच गये। उस समय आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान का दाढ़ी–मूछें वाला रूप नहीं था। आराध्यदेव जी ने जब अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग–योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की सायं कालीन आरती आरम्भ की तो ये भी सबसे पीछे खड़े हो गये।

श्री गुरुदेव भगवान आरती समाप्त कर कुछ आवश्यक कार्यवश श्री गुरुभवन में चले गये। तदन्तर इनको उपस्थित गुरुभाईयों से पूछने पर ज्ञात हो पाया कि यही इनके गुरुदेव भगवान हैं, जिनसे मन्त्र लेने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने इन्हें आज्ञा प्रदान की है। कोई परिचय न होने के कारण ये अपने को असहज स्थिति में अनुभव कर रहे थे। शर्मालु प्रवृत्ति का होने के नाते इन्होंने श्री नारायण जी ने किसी से परिचय भी नहीं किया एवं बिना भोजन के रात्रि जागरण कर 'राम–राम' का जप किया।

प्रातःकाल ये नैत्यिक क्रिया से निवृत्त होकर, श्री सिद्धगुफा के सामने विराजमान द्वय नीम के पेड़ के पास बैठकर , उस समय का इन्तजार करना आरम्भ किये, जब श्री गुरुदेव भगवान अकेले हों, परंतु इससे पहले ही एक मिनी ट्रक, एक जीप और एक कार आकर आश्रम वाले कुँए के पास खड़ी हो गई। कार एवं जीप से अच्छी भेष–भूषा वाले कुछ पुरुष एवं नारी उसमें से उतरे एवं वे अपना हाथ–पैर धोकर श्री गुरुभवन में चले गये। जीप से उतरने वाले कुछ पुरुष तथा ट्रक से उतरने वाले दो आदमी मिनी ट्रक एवं जीप से सामान उतार–उतार कर ले जाकर श्री गुरुभवन एवं गुफा की दीवाल के मध्य वाली जमीन पर रखने लगे। सब मिलाकर लगभग उतना सामान था, जितना उन दिनों मध्य वर्गीय समाज अपनी लड़की की शादी में दहेज में दिया करता था। सामान सब मिनी ट्रक एवं जीप से उतार कर रख दिया गया तो उन्होंने हमारे एक आदरणीय ब्रह्मचारी गुरुभाई से पूछा, 'भैया! आज किसी की मगनी (शादी होनी है क्या? उस आदरणीय ब्रह्मचारी भाई जी ने प्रश्न किया, 'क्यों, क्या बात है।' श्री नारायण जी ने कहा कि इतना सामान तो मगनी में ही एकल किया जाता है। उस आरदरणीय गुरुभाई ने कहा कि आज तोमर साहब (परम आदरणीय गुरुभाई श्री दुर्गा सिंह तोमर जी) की दीक्षा होनी है और वही यह सामान श्री गुरुभाई भगवान को दक्षिणा में देने के लिए लाये हैं। आदरणीय ब्रह्मचारी जी के मुख से ऐसी बातें सुनकर श्री नारायण को ऐसा लगा जैसे उनके पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई हो, बेचारा हतप्रभ सा होकर निराश एवं उदास हो गया। मन ही मन सोचने लगा कि भगवान श्री राम ने भी हमसे झूठ बोला। क्या वे भगवान हैं तो उनको इस तथ्य की जानकारी नहीं है कि गुरुमन्त्र लेना इतना महँगा है। श्री सिद्धगुफा आश्रम, सवाँई धाम के गुरु जी से तो इस जन्म क्या, कई जन्मों में गुरु मन्त्र नहीं ले सकता। इसी उदास एवं निराश मन से वह कमरा नम्बर एक के बांये वाले रास्ते से जाकर, कदम के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर, अपने दोनों हाथ सिर के दोनों तरफ लगाकर, अपने भाग्य को कोसते हुए, सोचने लगे कि अब बिना गुरुमन्त्र लिए वापस लौट जाऊं या क्या करूं। इधर अनाथनाथ ने आदरणीय भाई तोमर साहब को सपत्नीक दीक्षा दी एवं फिर तत्काल बाद दादा गुरुदेव द्वारा शक्तिपातित रोग निवारक तालाब की तरफ जाते दिखलाई दिये, परंतु पहुँच गये उस श्री नारायण के पास जो गुरुमन्त्र प्राप्त न होने की निराशा से आँसू बहा रहा था। शायद ऐसे ही दृश्यों का अनुभव कर किसी आध्यात्मिक कवि ने लिखा है:–

भरी कितनी करुणा है इनकी नजर में।
ये जाकर सुदामा भिखारी से पूछो।।
ये कण को कनक कर दिखाते हैं कैसे।
कला इनकी मंगल अनाड़ी से पूछो।।

इनको अपने पास आता देख श्री नारायण काछी खड़ा हो गया एवं ज्योंही साष्टांग प्रणाम करना चाहा, त्योंही श्री गुरुदेव जी ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया एवं फिर अपनी धोती से उसकी आखों के आंसुओं को पोछते हुए अगाध ममता भरी अपनी मधुरवाणी में बोले, 'लल्ला क्या बात है, क्यों रो रहे हो? उसने कहा 'कछू ना गुरु जी।' श्री मुख ने कहा, 'लल्ला! कछु तो है।' उसने फिर कहा, 'कछू ना गुरुजी।' श्री गुरुदेव ने कहा, 'लल्ला! कछु तो है एवं तत्काल बतलाओ क्योंकि तुम्हारी आँखों के आँसुओं की पीड़ा को मैं अब एक क्षण भी बर्दाश्त नहीं कर सकता।' श्री गुरुमुख के ये शब्द सुनकर उसने अपने साथ घटित पूरे घटना क्रम का सिसकते स्वर में वर्णन करते हुए कहा कि दीक्षा इतनी महंगी है, यह मैं नहीं जानता था। गुरुजी आप तनिक भी चिन्ता न करें, फिर अगले किसी जन्म में देखी जायेगी। अपना वाक्य समाप्त होते-होते वह बच्चों की तरह रोने लगा। उसकी प्रार्थना सुनकर अनाथनाथ के कमलवत नेत्र भी नम हो गये। योग-योगेश्वर, करूणेश्वर श्री गुरुदेव भगवन ने अपने कुर्ते से उसके आँसू पोंछे एवं उसको अपने कर कमलों द्वारा जमीन पर बैठाते हुए स्वयं पालथीमार कर बिल्कुल उसके बाद जमीन पर बैठ गये एवं मुखारविन्द से बोले, 'लल्ला! दीक्षा की कोई कीमत नहीं है, मैं तुम्हें अभी दीक्षा देता हूँ। आराध्यदेव ने तत्काल उसे मन्त्रदान की दीक्षा दी एवं कहा कि लल्ला! जिस प्रकार तुम 'राम-राम' जपते थे, उसी प्रकार इस मन्त्र का जप करना। इस दीक्षा से वह इतना आनन्दित हुआ कि उसकी आँखें डबडबा गईं एवं उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई। उसे अनेकानेक प्रकार से सान्त्वना देकर आराध्यदेव ने उसे सामान्य स्थिति में लाकर उसे खिल-खिलाकर हँसाया।

परंतु ठहरे तो नटवरलाल! उससे कहा, 'लल्ला! गुरुमन्त्र लेने के बाद दक्षिणा दी जाती है, तदन्तर मधुर मुस्कान के साथ कहा, 'मुझे गुरु दक्षिणा दो और इस बार झूठ मत बोलना कि गुरु जी कछु नाहीं।' परम भाग्यशाली नारायण द्विविधा में पड़ गया कि क्या करूँ, मेरे पास तो सिर्फ एक चवन्नी है, उसे कैसे दक्षिणा दूं।' लगभग पाँच मिनट बाद गुरुदेव ने आह्लादित मन से कहा कि ला वह चवन्नी हमें दे दो, जो तुम्हारे पास है। उसने सकुचाते हुए चवन्नी अपनी जेब से निकाली एवं त्रिलोकीनाथ ने उसे अपने कुर्ते की जेब में रख लिया एवं उसे निहाल कर दिया। कुछ माह पूर्व ही श्री नारायण जी की जीवन ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अखण्ड ज्योति में समाहित हो गई। अब तो यही गुनगुनाना है:-

चाहे तो राई से राव करे।
अरु राव को चाहे तो राई बनावे।।
चिट्टी के पैर में बाधि गजेन्द को।
चाहे तो सिन्धु से पार लगावे।।

एवं

धूरि धरत निज शिश पर
कह रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी
सोई ढूढ़त गजराज।।

▣▣▣

प्रभु प्रकाश से भर देते हैं!

देते हैं भगवान् सदा ही सहज मुझे निज दिव्य प्रकाश।
करते हैं नित मंगल मेरा, है यह मेरा दृढ़ विश्वास।।
संकट की प्रत्येक घड़ी में रहते हैं वे मेरे पास।
हर लेते संकट तत्क्षण ही जैसे रवि करता तम-नाश।।
नये नये पथ से आ-आकर करते घोर विपद् से त्राण।
विविध अनन्त साधनों से प्रभु करते हैं मेरा कल्याण।।
बरसाते इतनी अनुकम्पा, गणना नहीं-नहीं परिमाण।
अनुभव मुझे कराते अपना भर देते प्रकाश से प्राण।।

योग संदेश - श्री सद्गुरुदेव भगवान

अमित कुमार मिश्र, शुक्लागंज (उन्नाव)

आज गुफा सिद्ध से फिर आवाज है आई।
आओ आ जाओ लल्ला क्या मेरी याद नहीं आई।।

गुरुदेव हैं बुलाते भक्तों को अपने तत्क्षण,
कृपा सभी पे करते, योगिराज चन्द्रमोहन।

लल्ला न ये समझना मैं चला गया कहीं हूँ,
श्वांसों की माला फेरो पाओगे मैं वहीं हूँ,
नित तीन घंटे लल्ला गुरु मंत्र जाप करना,
और महाप्रभु जी का नित ही ध्यान करना,
हैं योग योगेश्वर प्रभु रामलाल भगवन।
गुरुदेव हैं बुलाते.....

जीवन तत्व साधन नित ही नियम से करना,
होगी कल्प काया, लगेगा छह महीना,
नेति, धौती, बस्ति और प्राणायाम करो तुम,
और गौ माँ की सेवा लल्ला नित करो तुम,
तैंतीस करोड़ देव गौ में, बसते हर क्षण।
गुरुदेव हैं बुलाते.....

लल्ला नित ही गीता का पाठ तुम करना,
श्लोकों का अर्थ भलीभाँति से समझना,
योग को अपने जीवन में, लल्ला तुम उतारो,
गुरु को न मानो चाहें, गुरुदेव कही मानो,
योग ही दिव्य अविनाशी है लल्ला जीवन।
गुरुदेव हैं बुलाते .....

चरणारविन्दं गुरुवर नित पहर दोनों करना,
प्रभु जी समान दाता तीनो लोक में हैं ही ना,
प्रभो पाहिं आपन्न नमामीश शंभो रटना,
अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल नित ही जपना,
करना न चिन्ता कुछ भी, नेपाल वाले हैं ना
गुरुदेव हैं बुलाते.....

श्री रामनवमी योग महामेला श्री प्रभु का,
अवतार इस दिन ही, हुआ था योग सिद्ध गुरु का,
इस दिन ही सिद्धयोग पत्रिका के सदस्य बनते,
हैं योग का प्रतिपादक, तुम सब नहीं क्यों पढ़ते,
मेरा 'विशेष लेख' प्रति माह इसमें पढ़िये,
मैं तो सिपाही प्रभु का उको ही पूजिए,
है भाग्य जो प्रभु जी मिल गए हम सभी को,
आशीर्वाद है हमारा, लल्ला तुम सभी को,
गुरुदेव है लिखाते, लिखती अमित कलम।
गुरुदेव हैं बुलाते.....

मन की शक्तियाँ - श्री स्वामी विवेकानन्द जी

लॉसएन्जिल्स कैलीफोर्निया में 8-1-1900 में दिया हुआ भाषण

श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने मन की अद्भुत शक्तियों का अपने प्रवचनों में वर्णन किया है। योगियों ने प्राचीनकाल से ही ध्यानयोग से होने वाली मन की परा-शक्तियों का साक्षात्कार किया है। इसी कारण से उनमें अलौकिक शक्तियाँ निहित रही हैं। मन की एकाग्रता से ही प्रकृति के सूक्ष्म-तत्वों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। महर्षि पतंजलि जी ने योग दर्शन में विस्तार से मन की एकाग्रता जन्य शक्तियों का विभूतियों के रूप में वर्णन किया है।

- सम्पादक

योगशास्त्र यह दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूँढ निकाला है, जिनके द्वारा इस व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इन नियमों तथा उपायों की ओर ठीक-ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। बड़ी-बड़ी व्यावहारिक बातों में यह एक महत्व की बात है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वदेशीय है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक - सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही एक महत्व की बात है। ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जो, हम जानते हैं, इन भौतिक नियमों से अतीत हैं। मतलब यह कि भौतिक जगत्, मानसिक जगत् या आध्यात्मिक जगत्- इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएँ नहीं हैं। जो कुछ है, सब एक तत्व है। या हम यों कहेंगे कि यह सब एक ऐसी वस्तु है, जो यहाँ पर मोटी है और जैसे-जैसे यह ऊँची चढ़ती है, वैसे-ही-वैसे वह सूक्ष्मतर होती जाती है; **सूक्ष्मतमको हम आत्मा कहते हैं और स्थूलतम को शरीर और जो कुछ छोटे प्रमाण में इस शरीर में है, वही बड़े प्रमाण में विश्व में है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। यह हमारा विश्व ठीक इसी प्रकार का है। बहिरंग में स्थूल घनत्व है और जैसे-जैसे यह ऊँचा चढ़ता है, वैसे-वैसे वह सूक्ष्मतर होता जाता है और अन्त में परमेश्वर-रूप बन जाता है।**

हम यह भी जानते हैं कि सब से अधिक शक्ति सूक्ष्म में है, स्थूल में नहीं। एक मनुष्य भारी वजन उठाता है। उसके स्नायु फूल उठते हैं और सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम के चिन्ह दिखने लगते हैं। हम समझते हैं कि स्नायु बहुत शक्तिशाली वस्तु है। परंतु असल में जो स्नायुओं को शक्ति देते हैं, वे तो धागे के समान पतले ज्ञान-तन्तु (Nerves) हैं। जिस क्षण इन तन्तुओं में से एक का भी स्नायुओं से सम्बन्ध टूट जाता है, उसी क्षण वे स्नायु बेकाम हो

जाते हैं। ये छोटे–छोटे ज्ञान–तन्तु किसी अन्य सूक्ष्मतर वस्तु से अपनी शक्ति ग्रहण करते हैं, और वह सूक्ष्मतर वस्तुएँ फिर अपने से भी अधिक सूक्ष्म विचारों से शक्ति ग्रहण करती है। इसी तरह यह क्रम चलता रहता है। इसलिए वह सूक्ष्म तत्व ही है, जो शक्ति का अधिष्ठान है। स्थूल में होने वाली हलचल हम अवश्य देख सकते हैं, परतु सूक्ष्म में होने वाली हलचल हम देख नहीं सकते। जब स्थूल वस्तुएँ हलचल करती हैं, तो हमें उसका बोध होता है और इसलिए हम स्वाभाविक ही हलचल का सम्बन्ध स्थूल से जोड़ देते हैं; परंतु वास्तव में सारी शक्ति सूक्ष्म में ही है। सूक्ष्म में होने वाली हलचल हम देख नहीं सकते। शायद इसका कारण यह है कि वह हलचल इतनी तीव्र होती है कि हम उसका अनुभव ही नहीं कर सकते। परंतु यदि कोई शास्त्र या कोई शोध इन सूक्ष्म शक्तियों के ग्रहण करने में सहायता दे, तो यह व्यक्त विश्व ही, जो इन शक्तियों का परिणाम है, हमारे अधीन हो जायेगा। पानी का एक बुलबुला झील के तल से निकलता है, वह ऊपर आता है, परंतु हम उसे देख नहीं सकते, जब तक कि वह सतह पर आकर फूट नहीं जाता। इसी तरह विचार अधिक विकसित हो जाने पर या कार्य में परिणत हो जाने पर ही देखे जा सकते हैं। हम सदा यही कहा करते हैं कि हमारे कर्मों पर, हमारे विचारों पर हमारा अधिकार नहीं चलता। यह अधिकार हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम विचारों को मूल में ही अगर अधीन कर सकें, तो इन सूक्ष्म हलचलों पर हमारी हुकूमत चल सकेगी। विचारों को कार्य में परिणत होने के पहले ही जब हम अधीन कर लेंगे, तभी सब पर हमारी हुकूमत चल सकेगी।

अब, अगर ऐसा कोई उपाय हो, जिसके द्वारा हम कारणभावों का अर्थात् इन सूक्ष्म शक्तियों का पृथक्करण कर सकें, उन्हें समझ सकें, और अन्त में अपने अधीन कर सकें, तो हम खुद पर अपना अधिकार चला सकेंगे। और जिस मनुष्य का मन उसके अधीन होगा निश्चय ही वह दूसरों के मनों को भी अपने अधीन कर सकेगा। यही कारण है कि पवित्रता तथा नीतिमत्ता सदा के लिए धर्म के विषय बने हुए हैं। पवित्र, सदाचारी मनुष्य स्वयं पर अपना अधिकार चलाता है। हम सब के मन उस एक ही समष्टिमन के अंश मात्र हैं। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया, उसने दुनिया की सारी मिट्टी जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्व–अधीन रख सकता है, वह दूसरों के मनों का रहस्य भी पहचानता है और उन पर अपनी हुकूमत चला सकता है।

हम अपने भौतिक दुःखों का अधिकांश दूर कर सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म कारणों पर अपना अधिकार चला सकें। हम अपनी चिन्ताओं को दूर कर सकते हैं, अगर यह सूक्ष्म हलचल हमारे अधीन हो जाय। अनेक अपयश टाले जा सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म शक्तियों को अपने अधीन कर लें। यहाँ तक तो उपयोगिता के बारे में हुआ; लेकिन इसके परे और भी कुछ उच्चतर साध्य है।

अब मैं तुम्हें एक विचार प्रणाली बतलाता हूँ। उसके सम्बन्ध में मैं अभी विवाद

उपस्थित न करूंगा, केवल सिद्धान्त ही तुम्हारे सामने रखूंगा। **प्रत्येक मनुष्य अपने बाल्यकाल में ही उन उन अवस्थाओं को पार कर लेता है, जिनमें से होकर उसका समाज गुजरा है।** अन्तर केवल इतना है कि समाज को हजारों वर्ष लग जाते हैं, जब कि बालक कुछ वर्षों में ही उनमें से हो गुजरता है। बालक प्रथम जंगली मनुष्य की अवस्था में होता है– वह तितली को अपने पैरों तले कुचल डालता है। आरम्भ में बालक अपनी जाति के जंगली पूर्वजों–सा होता है। जैसे–जैसे वह बढ़ता है, अपनी जाति की विभिन्न अवस्थाओं को पार करता जाता है, जब तक कि वह अपनी जाति की उन्नतावस्था तक पहुँच नहीं जाता। अन्तर यही है कि वह तेजी से और जल्दी–जल्दी पार कर लेता है। अब सम्पूर्ण मानव समाज को या सम्पूर्ण प्राणि–जगत् और मनुष्य तथा निम्न स्तर के प्राणियों की समष्टि को एक जाति मान लो। **एक ऐसा ध्येय है, जिसकी ओर यह समष्टि बढ़ रही है। उस ध्येय को हम पूर्णत्व नाम दे दें।** कुछ पुरुष ऐसे होते हैं, जो मानव समाज के भविष्यकालीन सम्पूर्ण विकास की कल्पना पहले ही कर लेते हैं। सम्पूर्ण मानव समाज जब तक उस पूर्णत्व को न पहुँचे, तब तक राह देखते रहने और पुनः पुनः जन्म लेने की अपेक्षा, वे जीवन के कुछ ही वर्षों में इन सब अवस्थाओं का अतिक्रमण कर पूर्णता की ओर अग्रसर हो जाते हैं। और हम जानते हैं कि इन अवस्थाओं में से हम तेजी से आगे बढ़ सकते हैं, अगर हम केवल आत्मवंचना न करें। असंस्कृत मनुष्यों को अगर हम एक द्वीप पर छोड़ दें और उन्हें कठिनता से पर्याप्त खाने, ओढ़ने तथा रहने को मिले, तो वे धीरे–धीरे उन्नत हो संस्कृति की एक–एक सीढ़ी चढ़ते जायेंगे। हम यह भी जानते हैं कि अन्य विशेष साधनों द्वारा भी इस विकास की गति बढ़ायी जा सकती है। क्या हम वृक्षों की बाढ़ में मदद नहीं करते? यदि वे निसर्ग पर छोड़ दिये जाते, तो भी वे बढ़ते, अन्तर यही है कि उन्हें अधिक समय लगता। निसर्गतः लगने वाले समय से कम समय में ही उनकी बाढ़ होने के लिए हम मदद पहुँचाते हैं। कृत्रिम साधनों द्वारा वस्तुओं की बाढ़ द्रुततर करना– यही हम निरन्तर करते आये हैं। **तो फिर हम मनुष्य का विकास शीघ्रतर क्यों नहीं कर सकते? समस्त जाति के विषय में हम ऐसा कर सकते हैं। परदेशों में प्रचारक क्यों भेजे जाते हैं?** इसलिए कि इन उपायों द्वारा जाति को हम शीघ्रतर उन्नत कर सकते हैं। तो, अब, क्या हम व्यक्ति का विकास शीघ्रतर नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं। क्या हम इस विकास की शीघ्रता की कोई मर्यादा बाँध सकते हैं। यह हम नहीं कह सकते कि एक जीवन में मनुष्य कितनी उन्नति कर सकता है। ऐसा कहने के लिए तुम्हें कोई आधार नहीं कि मनुष्य केवल इतनी ही उन्नति कर सकता है, अधिक नहीं। अनुकूल परिस्थिति से उसका विकास आश्चर्यजनक शीघ्रता से हो सकता है। तो फिर, क्या मनुष्य के पूर्ण विकसित होने के पूर्व उसके विकास की गति की कोई मर्यादा हो सकती है! अतएव इस सब का तात्पर्य क्या है? यही कि मनुष्य इस जन्म में ही पूर्णत्व–लाभ कर सकता है और उसे इसके लिए करोड़ों वर्ष तक इस संसार में आवागमन की आवश्यकता नहीं। **और यही बात योगी कहते हैं कि सब बड़े**

अवतार तथा धर्म-संस्थापक ऐसे ही पुरुष होते हैं; उन्होंने इस एक ही जीवन में पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है। दुनिया के इतिहास के सब कालों में इस तरह के मनुष्य जन्म लेते आये हैं। अभी कुछ ही दिन पूर्व एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया था, जिन्होंने मानवसमाज के सम्पूर्ण जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव अपने इसी जीवन में कर लिया था और जो इसी जीवन में पूर्णत्व तक पहुँच गये थे। परंतु विकास की यह शीघ्र गति भी कुछ नियमों के अनुसार होनी चाहिए। अब ऐसी कल्पना करो कि इन नियमों को हम जान सकते हैं, उनका रहस्य समझ सकते हैं और उनको अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए उपयोग में ला सकते हैं, तो यह स्पष्ट है कि इससे हमारा विकास होगा। हम यदि अपनी शीघ्रतर बाढ़ करें, शीघ्रतर अपना विकास करें, तो इस जीवन में ही हम पूर्ण विकसित हो सकते हैं। हमारे जीवन का उदात्त अंश यही है, और मनोविज्ञान तथा मन की शक्तियों का अभ्यास इस पूर्ण विकास को ही अपना ध्येय मानता है। पैसा और भौतिक वस्तुएँ देकर दूसरों की सहायता करना तथा उन्हें सुगमता से जीवन यापन करना सिखलाना– ये सब तो जीवन की केवल गौण बातें हैं।

▣ ▣ ▣

"अपने में ब्रह्मभाव को अभिव्यक्त करने का यही एकमात्र उपाय है कि इस विषय में दूसरों की सहायता करना। यदि प्रकृति के राज्य में समता न भी हो तो भी सब को समान सुविधा मिलनी चाहिए। फिर भी यदि किसी को अधिक तथा किसी को कम सुविधा देना हो तो बलवान की अपेक्षा दुर्बल को अधिक सुविधा प्रदान करना आवश्यक है। अर्थात् चाण्डाल के लिए शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, उतनी ब्राह्मण के लिए नहीं। यदि किसी ब्राह्मण के पुत्र के लिए एक शिक्षक आवश्यक हो तो चाण्डाल के लड़के के लिए दस शिक्षक चाहिए। कारण यह है कि जिसकी बुद्धि की स्वाभाविक प्रखरता प्रकृति के द्वारा नहीं हुई है, उसके लिए अधिक सहायता करनी होगी। चिकने-चुपड़े पर तेल लगाना पागलों का काम है। दरिद्र, पददलित तथा अज्ञ लोग तुम्हारे ईश्वर बनें।"

ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

प्रस्तुत लेख में परम श्रद्धेय श्री गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव हैं जो उन्होंने समाधि की सम्प्रज्ञात स्थिति में प्राप्त किये थे। ध्यान योग की सूक्ष्म अवस्था में लोक–लोकान्तर में जाकर विभूतिमान महापुरुषों के तथा भगवान के दिव्य लीलाओं का प्रत्यक्षीकरण करके आध्यात्म के सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त कर लिया करते थे और तीनों लोगों में उनकी यत्र तत्र सर्वत्र अप्रतिहत गति थी।

– सम्पादक

मानसरोवर दर्शन

श्री प्रभुजी कुछ मुस्कराकर मुझसे कहने लगे–यदि नहाना चाहते हो तो स्नान कर आओ। ध्यान में मैंने स्नान – इच्छा प्रकट की। तो श्री प्रभु जी ने द्वारपालों को इशारा किया। (फिर उन दोनों के साथ मैं जाने लगा) इधर–उधर वो दोनों जा रहे थे। मैं भी खूब तेजी से चल रहा था। किंतु आश्चर्य यह था कि पैरों से भूमि स्पर्श करती मालूम नहीं पड़ती थी। चलते–चलते सामने एक रास्ता आया। उन दोनों द्वारपालों में से एक बोला–इसने कौन सा ऐसा पुण्य किया है जो यहाँ आया है? दूसरा बोला : पूछ लो। पहले ने पूछा– तुमने कौन से पुण्य कर्म किये जो यहाँ आये हो। मैंने कहा– भाई, मैं पाप–पुण्य नहीं जानता। दूसरा बोला: यह पागल है, जो पाप–पुण्य दोनों कहता है। पुण्य तो यहां आने का कारण हो सकता किंतु पाप कैसे हो सकता है? पहला बोला : नहीं, पागल नहीं है। यह कोई गुप्त धर्मात्मा है, जो यहां आया है। दूसरा बोला : इससे अब ज्यादा कुछ न कहो। कुछ दूर चलने के बाद एक तालाब दीखने लगा। जिसके घाट मणि जटित थे। मणियों का प्रतिबिम्ब जल पर पड़ता था। इस दृश्य को देखने से आंखें हटना नहीं चाहती थीं। उस सरोवर में सुन्दर हंस मोतियों का भोग लगा रहे थे। हंस चोंच को जल में डालकर चूषण क्रिया से मोतियों को चूष लेते थे और मोती उनके गले में आते प्रतीत होते थे। दोनों द्वारपाल कहने लगे: तुम तालाब के समीप न जाओ। वहाँ देव–कन्यायें स्नान करने आयेंगी। मैंने ध्यान करके श्री प्रभु जी से पूछा : भगवन्! यह मुझको मना करते हैं और मेरा चित्त हंस–क्रीड़ा देखना चाहता है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जितना कुछ देख सके देख, इनका डर मत कर। फिर मैंने उनकी बातें न सुनीं। उनमें से एक बोला: इससे ज्यादा न कहो। यह कहीं वहाँ जाकर न कह दे। तब वे चुप हो गए। देव कन्या स्नान करने आयीं और अपने पैरों से जल भर–भर अपने ऊपर डाल कर स्नान करने लगीं। उनका शरीर दिव्य आभूषणों से देदीप्यमान हो रहा था। उनको देखकर मैंने मन ही मन प्रणाम किया। थोड़ी देर बाद ही हंस भी मोती खाकर तृप्त हो गये वे सब एक स्वर से शब्द करने लगे। उनका

शब्द दीर्घनादक था। वह 'ओउम्' की ध्वनि से पूर्ण था। उस शब्द को सुनकर मन की चंचलता तथा संकल्प-विकल्प दूर हो गये। फिर मैं स्नान करने के लिए फव्वारे के नीचे खड़ा हो गया, जो उस मानसरोवर में से छूट रहा था। स्नान करने के बाद शरीर हल्का हो गया और वहाँ की सृष्टि दीखने लगी। चारों ओर अति रमणीक बाग थे। उन बागों के पुष्प अत्यन्त सुगन्धित स्वर्ण की आभा से युक्त थे। उस तालाब में हंस क्रीड़ा कर रहे थे, उनके पर भी सुनहरे और स्फटिक मणि के समान थे। उन बागों के वृक्षों के पत्ते लटके नहीं थे, बल्कि खड़े थे। इस शोभा को देखने से मन नहीं भरता था। दोनों द्वारपाल कहने लगे: चलो अब आरती का समय हो गया है। यह सुनकर मैं उनके साथ लौट पड़ा। जब मैं श्री प्रभु जी के पास आया, तब नाना प्रकार के आभूषणों से सज्जित अप्सरायें गन्धर्व और देवताओं को नाद वाद्य के यन्त्रों से सज्जित देखा। मैं श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में प्रणाम कर बैठ गया। उसी समय दिव्य बाजे बजने लगे। गन्धर्व-अप्सरा गायन और नृत्य करते हुए परिक्रमा करने लगे। मैं उस आश्चर्य को देख रहा था। आरती होने के बाद सब देवता विसर्जित हुए। श्री प्रभु जी कहने लगे इन दोनों ने तुमको कुछ कहा तो नहीं? वह दोनों मेरी ओर दीन भाव से देखने लगे। मैंने कहा: नहीं प्रभो, मुझसे ऐसा कोई शब्द नहीं कहा, जिससे कि कष्ट पहुँचे। तब श्री प्रभु जी ने कहा: तुम यहाँ रहना चाहते हो या जाना चाहते हो। मन्द बुद्धि के कारण मेरे मुख से निकला, जाना चाहता हूँ। हम लोग चल दिए। रास्ते में मैंने कहा: हे प्रभो! आपने कहा था कि लौटते समय गन्धर्वों और सिद्धों का स्थान दिखलायेंगे। श्री प्रभुजी ने कहा: चलो पहिले गन्धर्वों का स्थान देखो। गन्धर्व और गन्धर्विणी मिल कर स्नान कर रहे थे। मैं उनकी क्रीड़ा देखने लगा। श्री प्रभुजी गुप्त हो गये। ध्यान किया तो ध्यान में श्री प्रभु जी ने कहा: या तो नाच ही देख ले या मुझे ही देख ले। मैंने कहा: चलिए, मैं नाच नहीं देखना चाहता। पुनः अलकापुरी का किला दिखाया, उसमें वह स्वच्छोद सरोवर दिखलाया, जिसमें से एक धार भागीरथ जी ले गये। जिसको भागीरथी कहते हैं। दूसरी धार केदारनाथ जी को गई थी जिसे मन्दाकिनी कहते हैं। तीसरी धार अलकापुरी से निकल कर बद्री नारायण को गई थी, जिसे अलखनन्दा कहते हैं। फिर मैंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की: वह स्थान दिखलाइये, जहाँ भीमसेन ने गन्धर्वों को मारा था। इतने में मुझको चेत आ गया।

मृत जन्म ज्ञान व प्रारब्ध क्षय

आज प्रातः कुएँ के ऊपर मैं, बरकतराम जी व उनके भाई स्नान करने गये। वहाँ कोई अधिक थी, उससे मेरा पैर फिसल गया। साबुन की डिब्बी खुली रखी थी। उससे मेरे हाथ का अंगूठा कुछ छिल गया और उससे खून बहने लगा हथेली की भी कुछ खाल उतर गई। जब मैं श्री प्रभु जी के पास आया तो सबने पूछा। श्री प्रभु जी ने भी कहा, यह क्या हो गया है? मैंने संकोच पूर्वक संक्षेप में वृत्तान्त कह दिया। श्री प्रभुजी ने हँस कर कहा: इसके दबाने से मेरे टांगों में दर्द होने लगा था। आज तो आराम मिलेगा। मैंने कहा: यह हाथ अभी अच्छा करवाऊंगा,

यह कहकर पट्टी खोल दी। इसके बाद भाई मुलखराज जी ने भगवान कृष्ण की भक्ति का भजन गाया फिर श्री प्रभुजी ने मुझे ध्यान-मग्न कर दिया। श्री प्रभुजी कृष्ण के रूप से अनेकरूपों से रास दिखला कर मेरा मन हरने लगे। इसी बीच मैंने प्रश्न किया कि भगवान आज यह चोट क्यों लगी? आप तो कहते थे कि हम अपने बच्चों को कोई कष्ट नहीं देते हैं। मुझे इसका और कोई कष्ट नहीं है। किंतु आज यह हाथ भली भांति श्री चरण संवाह नहीं कर सकता। इतना सुनकर श्री प्रभुजी ने मुझे मथुरा में गौघाट के पास गली में ले जाकर एक मकान दिखलाया और कहा पिछले जन्म में तू इस मकान में रहता था। तेरा नाम राम-नारायण था। तू गौड़ ब्राह्मण था। तेरी स्त्री भी थी। तेरे घर में गौ रहती थी। तू भक्त था। तूने निर्जला एकादशी का व्रत किया था। उसी दिन तू रनछोर ग्राम में एकादशी महात्म्य की कथा सुनने गया और अपनी स्त्री से कहा गया कि गौ के लिए कुट्टी (चारा) काट कर सन्ध्या समय में सानी कर देना। तेरी स्त्री एक के घर में खोड़िया यानी जन्मोत्सव देखने चली गई। उसने गौ को सानी नहीं खिलायी। तू जब ग्राम से लौट कर आया तब तूने अपनी स्त्री को बहुत भला-बुरा कहा और कुट्टी काटने लगा। वह रोकने लगी। गड़ाँसा उसके हाथ पर पड़ा और उसका हाथ कट कर अलग हो गया, वह पास के कुएँ में गिर गया तू उसे तड़फती छोड़ कर भय और क्रोध से भाग गया। तेरी स्त्री अपनी माता के घर चली गई और हाथ की तकलीफ से उसकी मृत्यु हो गई। इसके दण्ड-स्वरूप हाथ को कट कर तुझे मृत्यु को प्राप्त होना था। उसी का फल तुझे इतने से भुगता दिया। क्योंकि इस समय तू प्रभु की शरण में है व विवेक ख्याति की ओर बढ़ रहा है। श्री प्रभु जी परम कृपा का अनुभव कर मैं ध्यान से उठ गया, व उन कृपामय चरण-कमलों से लिपट गया।

भगवान श्री कृष्ण के दर्शन व आकर्षण-विद्या का ज्ञान

एक दिन श्री प्रभु जी ने बातों-बातों में कहा कि भगवान का कृष्ण नाम कृष्ण इसलिए पड़ा कि उसमें आकर्षण शक्ति अधिक थी। इसलिए इस विद्या को भगवन से ही क्यों न पूछा जाय? ऐसा संकल्प मन में हो गया। इसके पश्चात् कुछ देर बाद अनायास ही श्री प्रभु जी ने मुझे अन्तर्मुख करके ध्यान-मग्न कर दिया। मन में भगवान श्री कृष्ण के दर्शन का संकल्प फिर आया। संकल्प उदय होते ही भगवान श्री कृष्ण के दर्शन हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा, कहो पुत्र क्या शंका है? मैंने कहा प्रभो! आप आकर्षण-विद्या के ज्ञाता है। अतः कृपा कर आकर्षण-विद्या बतलाइये। उन्होंने कहा सुनो- हर प्राणी के नासिका-रन्ध्रों से श्वास-धारा के साथ तेजोमय परमाणु निकलते हैं। ये परमाणु जिसका जितना आत्मोत्थान हो चुका हो, उतने ही अधिक चमकीले व बलिष्ठ होते हैं और केवल मात्र दिव्य दृष्टि (ध्यान - दृष्टि) से ही देखे जा सकते हैं। ध्यानावस्था में अपने दिव्य तेजस्वी परमाणुओं से जिस किसी के भी दुर्बल परमाणुओं को खेंच कर आकर्षित किया जा सकता है, परंतु अपने से तेजस्वी पर यह आकर्षण नहीं चलता।

वैराग्य का महत्व

(सामार – गीता प्रेस) प्रेषक–रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

कल्याण की इच्छा करने वाले पुरुष को वैराग्य–साधना की परम आवश्यकता है। वैराग्य हुए बिना आत्मा का उद्धार कभी नहीं हो सकता। सच्चे वैराग्य से सांसारिक भोग पदार्थों के प्रति उपरामता उत्पन्न होती है। उपरामता से परमेश्वर के स्वरूप का यथार्थ ध्यान होता है। ध्यान से परमात्मा के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होता है। ज्ञान से उद्धार होता है। जो लोग ज्ञान सम्पादन पूर्वक मुक्ति प्राप्त करने में वैराग्य और उपरामता की कोई आवश्यकता नहीं समझते उनकी मुक्ति वास्तव में मुक्ति न होकर केवल भ्रम ही होता है। वैराग्य उपरामता–रहित ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं, केवल वाचिक और शास्त्रीय ज्ञान है। जिस का फल मुक्ति नहीं प्रत्युत और भी कठिन बन्धन है। इसलिए श्रुती कहती है–

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः।।

(ईश. म.द)

जो अविद्या की उपासना करते हैं वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो विद्या में रत रहते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। ऐसा वाचिक ज्ञानी निर्भय होकर विषय–भोगों में प्रवृत्त हो जाता है। वह पाप को भी पाप नहीं समझता, इसी से वह विषयरूपी दलदल में फस कर पतित हो जाता है।

वास्तविक ज्ञान के नाम पर महान अज्ञान ग्रहण कर लिया जाता है। अतएव यदि यथार्थ कल्याण की इच्छा हो तो साधक को सच्चा, दृढ़ वैराग्य उपार्जन करना चाहिए। किसी स्वांग विशेष का नाम वैराग्य नहीं है। किसी कारणवश या मूढ़ता से स्त्री, पुत्र, परिवार आदि का त्याग कर देना, कपड़े रंग लेना, सिर मुड़वा लेना, जटा बढ़ा लेना या अन्य बाह्य चिन्हों का धारण करना वैराग्य नहीं कहलाता। मन से विषयों में रमण करते रहना और ऊपर से दिखावा करना केवल मिथ्याचार –दम्भ है। भगवान कहते हैं –

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

(गीता 3/6)

जो मूढ़बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से रोक कर इन्द्रियों के भोगों को मन से चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

सम्प्रति दम्भ का बहुत विस्तार हो रहा है कोई लोगों को ठगने के लिए दिखावटी मौन धारण करता है। कोई आसन लगाकर बैठता, कोई धूनी तपता है, कोई केश बढ़ाता है। इनमें से कोई सा भी वैराग्य नहीं है। ये जरूरी नहीं कि सभी लोग ढोंगी हों जिन्होंने बाल बढ़ा रखे हैं, मौन धारण कर रखा है तो सभी दम्भी या दिखावटी नहीं हो सकते कुछ सच्चे वैरागी भी होते हैं लेकिन ज्यादातर ढोंगी ही होते हैं। उपरोक्त कथन किसी की निन्दा करने के लिए नहीं समझना चाहिए। जो साधक संयम के लिए, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ऐसा करते हैं उनकी कोई निन्दा नहीं है। लेकिन जो लोगों को ठगते हैं, धन प्राप्ति के लिए ऐसा करते हैं वो निन्दनीय है। जो पुरुष चित्त की वृत्तियों को भगवत् चिन्तन में नियुक्त कर सच्ची वैराग्य वृत्ति से बाहरी विषयों का त्याग करते वे सच्चे वैरागी होते हैं।

साधनकाल में वैराग्य की दो श्रेणियाँ हैं। जिनको गीता में वैराग्य और दृढ़ वैराग्य, योग दर्शन में वैराग्य और पर वैराग्य कहा गया है। वैराग्य के कुछ स्वरूप भी बतलाये गये हैं–

भय से होने वाला वैराग्य– संसार के भोग भोगने से परिणाम में नरक की प्राप्ति होगी, क्योंकि भोग में संग्रह की आवश्यकता है। संग्रह के लिए आरम्भ की आवश्यकता है और आरम्भ में पाप होता है। पाप का फल नरक या दुःख है। इस तरह भोग के साधनों में पाप और पाप का परिणाम समझकर उसके भय से अलग होना भय से उत्पन्न होने वाला वैराग्य है।

विचार से होने वाला वैराग्य– जिन पदार्थों को भोग मान कर उनके संग से आनन्द की भावना की जाती है, जिनकी प्राप्ति में सुख की प्रतीति होती है वे वास्तव में न भोग हैं न सुख के साधन हैं। न उनमें सुख है। दुःख पूर्ण पदार्थों में दुःख में ही अविचार से सुख की कल्पना कर ली गयी है इसी से वह सुख रूप भासते हैं, वास्तव में तो दुःख या दुःख के ही कारण है। इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग विषयी पुरुष को सुखरूप लगते हैं, पर वे वास्तव में दुःख के हेतु हैं। इस प्रकार विवेक द्वारा उत्पन्न वैराग्य विचार से होने वाला वैराग्य है।

साधन से होने वाला वैराग्य– जब मनुष्य साधन करते–करते प्रेम में मग्न होकर भगवान के तत्व का अनुभव करने लगता है तब उसके मन में भोगों के प्रति स्वतः ही वैराग्य उत्पन्न होता है। उस समय उसे संसार के समस्त भोग पदार्थ प्रत्यक्ष दुःखरूप प्रतीत होने लगते हैं। सब विषय भगवतप्राप्ति में स्पष्ट बाधक दीखते हैं। मान–बड़ाई, पूजा प्रतिष्ठा, आदर सत्कार इनमें साधारण मनुष्य फूले नहीं समाते ऐसे में सच्चा साधक ऐसे वातावरण से दूर रहता है। ये सब उसे अधः पतन में ले जाने के साधन नजर आते हैं। इस प्रकार के वैराग्य को साधन से होने वाला वैराग्य कहते हैं।

परमात्म तत्व के ज्ञान से होने वाला वैराग्य– जब साधक को परमात्म तत्व की उपलब्धि हो जाती है तब ही संसार के सम्पूर्ण पदार्थ उसे स्वतः ही रसहीन और माया मात्र

प्रतीत होने लगते हैं। फिर उसे भगवात तत्व के अतिरिक्त किसी में अन्य कुछ भी सार प्रतीत नहीं होता। तत्व ज्ञानी पुरुष को जगत के पदार्थों में सार और सत्ता की प्रतीति नहीं होती। इस प्रकार के वैराग्यवान पुरुष की संसार के किसी भोग–पदार्थ में आस्था ही नहीं होती ऐसा ही पुरुष परमात्मा के परम पद का अधिकारी होता है। इसी को पर–वैराग्य या दृढ़ वैराग्य कहते हैं।

साधकों को विचार करना चाहिए कि संसार के विषय जो हमें सुख रूप नजर आते हैं वे वास्तव में दुःख का कारण हैं। जैसे जीभ के स्वाद के लिए अच्छा चटपटा मसालेदार खाना। खाने में तो अच्छा आनन्द मिलता है, बड़ा अच्छा लगता है लेकिन परिणाम में वो हमें पेट की कई तरह की बीमारियाँ दे जाता है। स्त्री सुख आरम्भ में अच्छा लगता है लेकिन कालान्तर में वो शरीर को कमजोर और रोगाणु बना देता है। बढ़िया मर्सडिज कार अच्छी लगती है लेकिन वो भी हमें दुःख ही दे जाती है कहीं रास्ते में खराब हो गई या किसी अन्य वाहन से सीधे टक्कर हो गई। जो हमें सुखमय नजर आते हैं वास्तव में उनके अन्दर दुःख छुपा हुआ है लेकिन वो हमें नजर नहीं आता। योग दर्शन का सूत्र है

परिणाम ताप संस्कार दुःखे र्गुण वृत्ति विरोधाश्च दुःखमेव सर्व विवेकिनः।

(साधनपाद 15)

परिणाम दुःख – जो सुख आरम्भ में सुख रूप प्रतीत होता है परिणाम में महान दुःख रूप हो वह परिणाम दुःख कहलाता है।

ताप दुःख – जब मनुष्य अपने से दूसरे को किसी भी विषय में बढ़ा हुआ देखता है, हम से ज्यादा उन्नती कर रहा है तब हमारे हृदय में बड़ जलन होती है ये ही ताप दुःख है। दूसरे की उन्नती को देख कर जलना।

संस्कार दुःख – हमें अपने परिवार जनों से, स्त्री, पुत्र आदि तथा मकान, धन आदि से जो संस्कार बन गये हैं, जब उनका वियोग होता है तब हमें बड़ा दुःख का अनुभव होता है।

गुण वृत्तियों के विरोध जन्य दुःख – हर मनुष्य के अन्दर तीन तरह की वृत्ति होती है – सात्विकी, राजसी व तामसी तीनों एक दूसरे से बिल्कुल विरूद्ध हैं। जब राजसी वृत्ति हावी होती है तो मनुष्य छल कपट द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने की सोचता है ऐसे में जब सात्विकी वृत्ति प्रगट हो जाती है तो उसको ऐसा करने से रोकती है वो समझाती है कि ये पाप है ऐसा नहीं करना तो जब वृत्तियों का आपस में उलझना झगड़ना इसमें मनुष्य व्याकुल और कर्तव्यमूढ हो जाता है कि क्या करना चाहिए ऐसे झगड़ों से पैदा होने वाला दुःख गुणवृत्ति विरोध दुःख कहलाता है।

उपर्युक्त भय और विचार से होने वाले दोनों प्रकार के वैराग्यों को प्राप्त करने के यही उपाय हैं। साधकगणी के लिए यहां इतना और बता दें कि वैराग्य का अर्थ ये कदापि न लगायें

कि हमें घर–परिवार को छोड़ कर जंगल में जाना पड़े तभी वैराग्य सिद्ध होगा। ऐसा सोचना बिल्कुल गलत है व गलत धारणा है। वैराग्य का मतलब होता है विषयों से राग हटाना उनमें आसक्ति का भाव न रखना केवल व्यवहार में लाना है उनका भोग जरूर करना लेकिन भोगों में आनन्द नहीं लेना आसक्त नहीं होना। अपने परिवारजनों के प्रति अपना कर्तव्य का पालन करना। अपने कर्तव्य कर्म से भागना नहीं अपना फर्ज निभाते हुए व्यवहार करना और सोचना कि ईश्वर ने ये जिम्मेवारी मुझे दी है और इसको पूर्ण निष्ठा व ईमानदारी से निभाऊंगा कभी कर्तव्य से अपने फर्ज से मुंह नहीं मोड़ुगा।

बिना किसी स्वार्थ की भावना से या किसी भी फलेच्छा से अपना कर्म करना ही सच्ची सेवा है। इसी में वैराग्य की भावना भी बनी रहती है। जहाँ कामना रहती है, जहाँ फल प्राप्ति की इच्छा रहती है वहीं बन्धन होता है। हमको हमारा कर्तव्य ठीक उसी तरह निभाना है जैसे राजा जनक ने निभाया था। हर प्राणी में ईश्वर का वास है सभी में परमात्मा का निवास ऐसी भावना रखते हुए उनकी सेवा करनी है। 'नर सेवा नारायण सेवा' का भाव रखो। परमात्मा का चिन्तन बनाये रखो, नाम जप का स्मरण हमेशा बना रहे। ये ही सच्चे वैराग्य बनने का मार्ग है।

▣▣▣

*"अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है, तो कीट-पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? **It is better to wear out than to rust out.** जराजीर्ण होकर थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है?"*

गणितीय सूत्र का संक्षिप्त प्रयोगात्मक स्वरूप

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

सूत्र में आध्यात्मिक सिद्धि के लिए तीन मार्गों का उल्लेख हुआ है। हम यह उपरोक्त वर्णन में संकेत दे चुके हैं कि तीनों मार्ग परस्पर पूरक हैं। परमात्मा ने मनुष्य शरीर में अपने को प्रकाशित करने तथा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का अनुभव कराने के लिए वेदों में तीन स्थानों का उल्लेख किया है। यह तीन मार्ग भी जीवात्मा को उन्हीं तीन स्थानों तक का मार्ग प्रशस्त करते हैं। कौन किस मार्ग से परमात्मा का साक्षात्कार कर सकेगा, यह उसके पूर्व जन्मों के संस्कारों पर निर्भर करता है। यह संसार परमात्मा की अतिविचित्र तथा अनिर्वचनीय लीला है और यही उसकी महिमा भी है। महर्षि वेदव्यास का कहना है कि

लीलाकैवल्यं तच्छ्रुतेः

अर्थात् वेद के अनुसार यह सृष्टि परमात्मा की लीलामात्र है।

श्रुतिप्रमाण है कि

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यैव अवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।
संयुक्तं एतद् क्षरमक्षरं व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा वध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवमुच्यते सर्वपाशैः।।
सर्वाजीवे सर्वसंस्थिते ब्रह्न्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
प्रथक् आत्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्तत; तेन अमृतत्वमेति।।
अंगुष्ठेमात्री पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मन्वीशः मनसाभिक्लृप्त य एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति।।

अर्थात् यह चौबीस तत्वों से निर्मित प्रकृति संसार के रूप में भ्रान्तिज्ञान के कारण अज्ञानियों को दिखाई देती है। यह केवल परमात्मा की त्रिगुणात्मक माया है और स्वयं परमात्मा इसका मायावी है। सत्य यही है कि उस मायावी परमात्मा ने ही अनेक भेद वाले रूप धारण कर जीवात्मा को इन्द्रियाँ रूपी चश्मा पहना दिया है जिसके द्वारा यह संसार सत्य भासित हो रहा है ठीक वैसे ही जैसे हमारी आँखों को आकाश मण्डल पृथ्वी को छूता दिखाई देता है। यह जगत प्रकृति के अवयवों का ही रूपान्तर है जो कि प्रकृति के गुणों के क्रमपरिणाम के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। प्रकृति के अवयवों में अन्तरात्मा के रूप में ज्ञान स्वरूप परमात्मा ही सर्वव्यापी है, इसी कारण उपनिषदों का यह निश्चय है कि

यद् एतद् दृश्यते मूर्त एतद् ज्ञानात्मनः तव
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिनः।
ये तु ब्रह्मविदः शुद्धचेतसः ते अखिलं जगत्
ज्ञानात्मक पश्यन्ति त्वत्रूपं परमेश्वरम्।।

अर्थात् यह मूर्तिमान संसार ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ही रूपान्तर है, केवल अज्ञानी मनुष्यों को ज्ञानदृष्टिविहीन होने के कारण भ्रान्तिज्ञान से जगत के रूप में दिखाई दे रहा है, ठीक वैसे ही जैसे जीवात्मा अपने तेजसरूप से निर्मित स्वप्न के संसार को सत्य देखता है। किंतु जिन्हें ज्ञानदृष्टि प्राप्त हो गई है और अपने निर्मल चित्त में परमात्मा का साक्षात्कार हो गया है, उन्हें यह सम्पूर्ण जगत ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का ही लीलारूप दिखाई देता है। परमात्मा ही इस जगत का संचालन, भरण–पोषण तथा शासन करता है जो कि पराप्रकृति (कारणब्रह्म) तथा अपराप्रकृति (कार्य ब्रह्म) का संयुक्तरूप है। अविद्या के कारण भोक्ता बना जीवात्मा भोगवासना से अपने को माया के बन्धन में फँसा देखता है तथा परमात्मदर्शी सभी मायिक बन्धनों से मुक्त होकर अपने को स्वतन्त्र, गुणातीत तथा अपने सहज परमानन्दस्वरूप में अनुभव करता है। हमारे सभी दुःखों का एकमात्र कारण भी यही है कि हम जीवात्मा बनकर अपने को परमात्मा से भिन्न समझते हैं। जिस क्षण योगसाधना तथा परमात्मा में अनन्यभक्ति का आश्रय लेकर हम अन्तः करण से मायिक विकारों की चित्तवृत्तियों को धोकर उसे निर्मल कर लेते हैं ताकि उसमें अध्यात्मविद्या का ही प्रकाश छा जाय तथा परमात्मा का सर्वव्यापी, निर्गुण तथा निराकार स्वरूप हमारी बुद्धि को प्रकाशित कर दे, उसी क्षण हमें शोकों से मुक्ति मिल जाती है। अन्तःकरण में परमात्मा का शुद्धस्वरूप तीन प्रवेशद्वारों से प्रवेश करता है, समर्पणभक्ति के द्वारा हृदय–चक्र से, अध्यात्मविद्या के द्वारा विशुद्ध बुद्धि से तथा योगसाधना के द्वारा चित्तपरिणामों से। यही तीनों मार्गों का अन्तिम लक्ष्य है। यही अध्यात्मसिद्धि है।

इन मार्गों पर निर्विघ्न चलते रहने के लिए हमें क्या उपाय करने होंगे, इसका मार्गदर्शन हमें भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को माध्यम बनाकर दे दिया है। भगवान श्रीकृष्ण के मतानुसार योग, ईश्वरभक्ति तथा आत्मज्ञान का संगम ही परमात्मस्वरूप की प्राप्ति का गन्तव्य स्थान है 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म स आत्मा तत्वमसि' यानि ब्रह्म एक ही है और अद्वितीय है, उसे ही आत्मा कहते हैं और वह तुम ही हो' अर्थात् आत्मा तथा परमात्मा में भेद अज्ञानकल्पित है। अज्ञान के नष्ट होने पर एकत्व स्थापित हो जाता है। जीवात्मा पर आरोपित भाव स्वतः नष्ट हो जाते हैं। परमात्मा की माया के मुख्यतः तीन बन्धन है। (1) स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर में आत्मा का देहाध्यास (2) पंच क्लेशों का बुद्धि पर आवरण (3) चित्त में कर्माशय का आवरण। इन आवरणों के नितान्त अभाव में ही जीवात्मा तथा परमात्मा

की अभिन्नता प्रकाशित होती है।

इस संसार का आवागमन का चक्र कर्मबन्धन के अनुसार चलता है 'कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ' अर्थात् मनुष्य लोक में जीवात्मा प्रारब्धकर्म के भुगतान तथा पंचक्लेशों के प्रभाव में अहंकार जनित कर्माशय से बँधा रहता है। यह बन्धन अध्यात्मविद्या तथा क्रियायोग रूप की अग्नि से ही भस्म होती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट संकेत दिया है कि –

प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम्।।

अर्थात् जो साधक निरन्तर अध्यात्मसिद्धि के लिए प्रयत्नशील है, जो साधना में तत्परता से लगा हुआ है, जिसका चित्त मायिक विकारों के नष्ट होने पर शुद्ध तथा निर्मल हो गया है और जिसने अनेक जन्मों को इसी प्रयत्न तथा साधना में लगा दिया है, वही ईश्वरकृपा का पात्र होकर अध्यात्मसिद्धि को प्राप्त करता है। यह साधना किस प्रकार चलाई जानी चाहिए, इस पर भगवान श्री कृष्ण बताते हैं कि

आरूरूक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

अर्थात् योगसाधना में आरूढ़ होने के लिए सर्वनियन्ता परमात्मा की सेवार्थ कर्म करना आवश्यक है तथा योगारूढ़ हो जाने पर परमात्मा में समाहित होकर शान्ति की आवश्यकता रहती है। यह शान्ति कब आती है जब कि–

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्यते।
सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते।।

अर्थात् जब इन्द्रियां अपने अपने विषयों में आसक्ति का त्यागकर शुद्ध आत्मतत्व में लीन हो जाती हैं तब योगी संकल्प विधि से चित्तवृत्तियों का निरोध कर अपने चित्ताकाश में अपने ही सर्वव्यापी सच्चिदानन्दस्वरूप का साक्षात्कार करता है और इसी अवस्था को योगारूढ़ होना कहते हैं। योगारूढ़ से ही अपने सर्वव्यापी स्वरूप की अनुभूति संभव है। उपनिषदों का यही संकेत भी है कि–

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिव अर्पितम्।
अध्यात्मविद्यातपोमूलं एतद् ब्रह्मोपनिषद् परम्।।

अर्थात् सर्वव्यापी आत्मा संसार में उसी तरह गुप्त है जैसे कि घृत दुग्ध में व्यापी होते भी गुप्त रहता है तथा यत्न करने पर अग्नि में तपाने से प्रकट होता है। इसी प्रकार यह सर्वव्यापी आत्मा योगाग्नि में तपाने पर अध्यात्मविद्या के दिव्य प्रकाश में प्रकट होती है यानि

बुद्धि को उसके सर्वव्यापी स्वरूप का साक्षात्कार होता है। इसके लिए साधक को कैसा यत्न करना चाहिए, इस पर भगवान श्रीकृष्ण प्रकाश डालते हैं कि–

योगी युञ्जीत् सततं आत्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्जयात् योगमात्मविशुद्धये।।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन अचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्च नोवलोकयन्।।
प्रशान्तात्मा विगत भीः ब्रह्मचारिवृते स्थित।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः।।
युंजन्नेव सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।

अर्थात् योगी बनने के लिए सांसारिक वृत्तियों को चित्त से हटाना होगा, इसलिए अपने आपको संसारी लोगों से दूर रखते हुए एकान्त स्थान में रहकर निरन्तर श्रद्धापूर्वक चिरकाल तक ध्यानयोग का अभ्यास करना होगा। इसके लिए मन से सांसारिक चिन्तायें हटा मन तथा बुद्धि को अपने तक ही सीमित करना होगा, बाह्य विषयों का चिन्तन करने वाले चित्त पर नियन्त्रण रखते हुए सांसारिक कामनाओं का त्याग करना होगा, इन्द्रियभोग की वस्तुओं का त्याग करना होगा और फिर शुद्ध हुए मन तथा बुद्धि से युक्त होकर एकान्त तथा शुद्ध स्थान में समतल भूमि पर पहले कुश का आसन, उसके ऊपर मृगचर्म का आसन तथा उसके ऊपर वस्त्रासन बिछाकर उस पर बैठ कर बाह्य इन्द्रियों के द्वारों को बन्द करके ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिए। निद्रा के विघ्न से बचने के लिए रीढ़ की अस्थि, सिर तथा गर्दन को सीधा रखते हुए मन को एकाग्र करना चाहिए, जब उदय तथा अस्त होने वाली चित्तवृत्ति समान यानि तुल्य हो जाय, तब चित्त को उसी लक्ष्यवृत्ति पर स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए, जब चित्तवृत्ति लक्ष्याकार होकर स्थिर हो जाय तब शनैः शनैः स्वरूपशून्यता की तरफ अग्रसर होना चाहिए ताकि ध्याता, ध्यान तथा ध्येय एकीकृत होकर स्वयंप्रकाशी आत्मतत्व में लीन हो जाय। इस प्रकार निरन्तर श्रद्धापूर्वक तथा चिरकालीन योगाभ्यास के परिणामस्वरूप चित्त निर्मल होता जायेगा, निर्मल चित्त में, वृत्तियों के अभाव में परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगेगा, क्योंकि रजोगुण तथा तमोगुण के प्रभाव के नष्ट होने पर शुद्ध सतोगुण में स्वतः परमात्मभाव का अनुभव होता है, इसका शास्त्रप्रमाण है

कि

सत्वं विशुद्धं जलवत तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन् सः सदानन्दरससंसमृच्छते।।

अर्थात् शुद्ध सतोगुण शुद्ध जल के समान है, किंतु जैसे जल कीचड़ तथा धूलादि की गन्दगी से अशुद्ध होने पर उसमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता, किंतु गन्दगी को साफ कर देने के बाद शुद्ध हुए जल में प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है, इसी प्रकार चित्त में से रजोगुण तथा तमोगुणी चित्तवृत्तियों के नष्ट होने पर शेष बचे सतोगुण में परमात्मा का प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है। किंतु इसी शुद्धिकरण की प्रक्रिया में शरीर के साथ मन के सम्बद्ध होने के कारण अनेक विघ्न-बाधायें उपस्थित होती हैं। यह अन्तराय शारीरिक भी होते हैं, जैसे कि व्याधियाँ, आलस्य आदि तथा मानसिक भी होते हैं जैसे कि मोह-माया, कामनाओं की पूर्ति की चिन्तायें तथा भोगवासना के कारण मन की चंचलता आदि। इन अन्तराओं को हटाने के लिए क्रिया योग यानि तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-भक्ति की विशेष आवश्यकता होती है, क्योंकि क्रियायोग की नियमित साधना से चित्त को समाधि की योग्यता तथा अन्तराओं के अभाव की अनुभूति होती है। ऐसा महर्षि पतंजलि का अनुभव है कि

''समाधिभावनार्थाय अन्तरायाभावश्च''

अर्थात् क्रिया योग से समाधि की भावना पुष्ट होती है तथा समस्त अन्तरायों का अभाव होता जाता है जिससे कि योगी अपने अभीष्ट पथ पर अग्रसर होता जाता है। इस साधना में यह अत्यन्त आवश्यक है कि साधक सदैव अपने लक्ष्य का स्मरण रखते हुए उस परमात्मा का स्मरण भी करता रहे जिसकी लीला के ब्रह्मचक्र में हम जीवित हैं।

(शेष अगले अंक में)

''सुर तथा असुर में और कुछ भेद नहीं- भेद केवल निःस्वार्थ तथा स्वार्थ में है। असुर भी उतना जानता है, जितना सुर, उसमें बस पवित्रता नहीं होती - इससे वह असुर बन जाता है। आधुनिक संसार पर यही भावना लागू करो। अपवित्र ज्ञान और शक्ति का अतिरेक मनुष्यों को असुर बना देता है।''

सिद्धयोग

आय-व्यय का विवरण वर्ष - 2009-10

आय		व्यय	
पिछला शेष	158442/-	कागज व छपाई	109515/-
वार्षिक शुल्क	125209/-	कार्यालय खर्च	010185/-
सहयोग राशि	036310/-	शेष जमा	206976/-
बैंक ब्याज से प्राप्त (सूची निम्न है)	006715/-	कुल योग -	326676/-
कुल योग -	326676/-		

सहयोग राशि दाताओं की सूची

श्रीमती कल्पना गुप्ता, लखनऊ	21001/-	वैभव, कानपुर	1100/-
बृज मोहन, बुलन्दशहर	100/-	जे.पी. गुप्ता, गंगापुर सिटी	501/-
राज कुमार सैनी, देहरादून	551/-	ओमवती, हापुड़	500/-
ओम प्रकाश, सिरसा (हरि.)	1100/-	डी.एस. पाण्डे, वैतूल	200/-
प्रेम शर्मा भट्टू, कलाँ सिरसा	5000/-	शिव सेवक पाण्डे, वैतूल	500/-
सावित्री, पंचकूला	101/-	ललित शर्मा, पंचकूला (हरि.)	2000/-
श्रीकृष्ण गुप्ता, कालपी	1100/-	वेद पाल, बड़ौदा	100/-
जय कुमार, मातण्ड	500/-	सतपाल, गढ़ी गुजरान	100/-
आर.एन. शर्मा	51/-	बलवन्द सिंह, गुजरान	250/-
सुरेन्द्र सवल कोन्ड	505/-	आनन्द प्रकाश, ज्ञान प्रकाश s/o अयोध्या प्रसाद, एत्मादपुर	1000/-
छाया चौधरी, मालवा	50/-	कुल योग -	36310/-

गीता जी के विविध पालनीय बिन्दु

1. जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों का बार-बार देखना।
2. प्रकृति के गुणों द्वारा विचलित नहीं होना; क्योंकि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं।
3. ब्रह्मचर्य का पालन करना।
4. देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषों का यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त महापुरुषों से सुनकर उपासना करना।
5. मन को सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलता में सम रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा समझें कि आने-जाने वाली और अनित्य है, इसलिए सहन करें तथा इस मन्त्र का जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'
6. यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य देवताओं का निष्कामभावपूर्वक पूजन-अर्चन करना।
7. सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणोंद्वारा किये जाते हैं। अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है। अतः किसी भी कार्य में अपने को कारण नहीं मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।
8. शास्त्रविधि के अनुसार चलें। कल्याणकारी शास्त्रों को आदर्श मानें।
9. सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् को अर्पण करनी चाहिए। जो कुछ करें, जो कुछ खायें, जो कुछ हवन करें, जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें- सब कुछ प्रभु को अर्पण करें।
10. ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकता से कम नींद भी न लें। आवश्यकता से अधिक भोजन न करें तथा जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत शास्त्रोक्त होने से करने चाहिए।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आफसन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पैण्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/-प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रुप 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक, कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा